वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं० १३७

अवध की अनमोल मणि
गणिनी ज्ञानमती

लेखिका :
आर्यिका चन्दनामती

प्रकाशक :
दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान
हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०

प्रथम संस्करण ३३०० | शरद पूर्णिमा वीर नि०सं० २५१८ ११-१०-९२ | मूल्य ५) रुपये

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रन्थों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

संस्थापिका व प्रेरणास्रोत :
गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी

समायोजन :
आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

निर्देशक :
पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी

ग्रन्थमाला सम्पादक :
बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : सुमन प्रिण्टर्स, शारदा रोड, मेरठ।   फोन : २४३१६

2.11.92

संपादकीय

परमपूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी उन महान आत्माओं में से हैं जो स्वयं अपने क्रियाकलापों से संसार को दिशानिर्देश प्रदान करते हैं। इनके बहुआयामी व्यक्तित्व को इन लघु पुस्तिकाओं में समेट पाना किसी भी लेखक के लिए संभव नहीं है। फिर भी गुरुभक्ति का लक्ष्य लेकर आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने उनके कतिपय आदर्शों का इस पुस्तक में उल्लेख किया है।

इस पुस्तक का नाम रखा गया है—"अवध की अनमोल मणि" जो कि सार्थक ही है। अवध प्रान्त की मिट्टी सचमुच करोड़ों वर्षों बाद ब्राह्मी माता के इस द्वितीय अवतार को अवतरित कर धन्य हो गई जिसकी चमक आज सम्पूर्ण भूमण्डल को आलोकित कर रही है।

पाठकगण पुस्तक पढ़कर पूज्य माताजी के जीवन से कुछ आदर्श अवश्य ग्रहण करेंगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

—ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन

आभार

मण्टोला पहाड़गंज-नई दिल्ली निवासी श्री नवीन कुमार जैन एवं श्रीमती अलका जैन ने दशलक्षण पर्व में पुष्पांजलि व्रत के ५-५ उपवास किए। उसके पश्चात् हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र यात्रा करके उन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर ज्ञानदान का महान् पुण्य अर्जित किया है।

दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान उनके इस सहयोग के लिए आभारी है।

—संपादक

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका

आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी का संक्षिप्त परिचय

—कु० आस्था शास्त्री (संघस्थ)

पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी का जन्म अवध प्रान्त के बाराबंकी जिले में टिकैतनगर नामक एक छोटे से ग्राम में लाला श्री छोटेलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी की कुक्षि से १८ मई सन् १९५८ में ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को हुआ था। आपका दीक्षा के पूर्व का नाम कु० माधुरी था।

आपने सन् १९७१ के अजमेर चातुर्मास में १३ वर्ष की लघुवय में भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी से आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया और फिर आपके कदम त्यागमार्ग की ओर बढ़ते गए। सन् १९७२ में सोलापुर परीक्षा बोर्ड से शास्त्री की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पूज्य माताजी के मुख से अष्टसहस्री, गोम्मटसार आदि बड़े-बड़े ग्रन्थों का अध्ययन किया। आपकी बुद्धि तीक्ष्ण, प्रखर होने से एक दिन में २५-३० गाथाओं को कण्ठस्थ कर लेती थीं। शास्त्री, विद्यावाचस्पति आदि उपाधियाँ परीक्षा देकर आपने प्राप्त की थी।

पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी से ही सन् १९८१ में २ प्रतिमा के व्रत एवं सन् १९८७ में ७ प्रतिमा के व्रत और आजीवन गृहत्याग व्रत ग्रहण किया।

१७ जुलाई १९८९ चातुर्मास स्थापना के दिन आपने पूज्य माताजी के समक्ष श्रीफल चढ़ाकर दीक्षा के लिए प्रार्थना की। बहुत से लोगों ने मोहवश मना किया, लेकिन पूज्य माताजी ने आपकी दृढ़ता देख स्वीकृति प्रदान की और १३ अगस्त १९८९ श्रावण शुक्ला एकादशी को दीक्षा का शुभ मुहूर्त निकाल दिया।

रविवार १३ अगस्त को हस्तिनापुर का पाण्डाल खचाखच भरा हुआ था। बहुत दूर-दूर से सभी कु० माधुरी जी की दीक्षा देखने आए

थे। माधुरी जी के लम्बे-लम्बे केशों का लोंच देखकर सभी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी थी। पूज्य माताजी ने दीक्षा के संस्कार कर उनका आर्यिका 'चन्दनामती' नाम घोषित किया।

आपने बहुत छोटी उम्र से ही पूजन, आरती, भजन आदि बनाने शुरू कर दिए थे। सभी विधानों में आपके द्वारा रचित आरती पढ़ी जाती है। समयसार ग्रन्थ की गाथाओं की और कुन्दकुन्द मणिमाला की १०८ गाथाओं का पद्यानुवाद किया है। भक्तामर विधान पूजन की रचना की। सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका में प्रायः सभी लेख आपके ही रहते हैं। आपने ज्ञानज्योति इतिहास को विस्तृत रूप से लिखा है। आपकी संप्रेरणा और सक्रिय सहयोग से परम पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी का अभिवंदन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

वात्सल्य प्रदायिनी, करुणामूर्ति, पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के पुनीत चरणों में शत्-शत् वन्दन।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" का निर्माण सन् १९७४ में किया गया। जब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रन्थमाला से पाठकों को ग्रन्थ सस्ती कीमत में प्राप्त हो सकें इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् १९९० से प्रारम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

परम संरक्षक—

१. श्री मांगीलाल बाबूलाल जी पहाड़े, हैदराबाद (आ० प्र०)
२. श्रीमती शकुन्तला देवी जैन ध० प० श्री लाला सुमतप्रकाश जैन गज्जू कटरा शाहदरा दिल्ली

संरक्षक—

१. श्रीमती आदर्श जैन ध० प० स्व० श्री अनन्तवीर जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, हस्तिनापुर
२. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखरचन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमीचन्द जैन, सनावद (म० प्र०)
३. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, बम्बई
४. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई
५. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, बम्बई
६ श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, बम्बई
७. श्री मथुरा बाई खुशालचन्द जैन की पुण्य स्मृति में द्वारा—श्री रतनचन्द खुशालचन्द गांधी के सुपुत्र श्री धन्यकुमार, अशोक कुमार, शिरीष कुमार, धर्मराज गांधी, फलटन (सातारा) महा०
८. श्री शांतिलाल खुशालचन्द गांधी, फलटन (सातारा) महा०
९. श्री अनन्तलाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा०
१०. श्री हीरालाल माणिकलाल गांधी, अकलूज (सोलापुर) महा०
११. श्री जयकुमार खुशालचन्द गांधी, अकलूज (सोलापुर) महा०
१२. श्रीमती बदामीदेवी मातेश्वरी श्री पद्मकुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ० प्र०)
१३. श्रीमती कमला देवी ध. प. स्व० श्री महेन्द्र कुमार जैन, घंटे वाले हलवाई, दरियागंज–नई दिल्ली
१४. श्रीमती उषादेवी ध. प. श्री श्रवणकुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली
१५. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहनशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली
१६. श्री हुकमीचन्द मांगीलाल शाह धान मंडी, उदयपुर (राज०)
१७. श्री किरणचन्द जैन, कटरा धूलियान, चांदनी चौक, दिल्ली
१८. श्रीमती विमला देवी ध. प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजीनियर विवेक विहार, दिल्ली
१९. श्रीमती उषादेवी ध. प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी) पो० बहराइच (उ० प्र०)
२०. श्रीमती लीलावती ध. प. श्री हरीशचन्द जैन, शकरपुर, दिल्ली
२१. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एंक्लेव, दिल्ली

२२. श्री रतिलाल केवलचन्द गांधी की पुण्य स्मृति में, पापूलर परिवार सूरत, (गुजरात)
२३. श्रीमती भंवरीदेवी ध. प. स्व० श्री सदासुख जी जैन पांड्या की स्मृति में इन्दरचन्द सुमेरमल जैन पांड्या, शिलांग (मेघालय)
२४. श्रीमती सोहनी देवी ध० प० श्री तनसुखराय सेठी, फैंसी बाजार, गौहाटी (आसाम)
२५. श्रीमती धापूबाई ध. प. श्री कस्तूरचन्द जैन, रामगंजमंडी (राज०)
२६. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ०प्र०)
२७. श्रीमती शकुन्तला देवी ध० प० श्री सुरेशचन्द जी जैन, बर्तन वाले, खुड मौहल्ला, देहरादून (उ० प्र०)
२८. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म० प्र०)
२९. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ० प्र० अध्यक्ष— श्री सरोज कुमार जैन, मन्त्री श्री मुन्नालाल जैन, कोषाध्यक्ष श्री प्रेमप्रकाश जैन
३०. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर)
३१. श्री इन्दरचन्द कैलाशचन्द जैन चौधरी, सनावद (म० प्र०)
३२. श्री अमोलकचन्द प्रकाशचन्द जैन सर्राफ, सनावद (म० प्र०)
३३. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दशरथ सा, सनावद (म० प्र०)
३४. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), श्योपुर कलां, (म० प्र०)
३५. श्रीमती सुषमा देवी ध० प० श्री राकेश कुमार जैन, मवाना
३६. श्रीमती कुसुम जैन ध० प० श्री रमेश चन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ (उ० प्र०)
३७. श्रीमती किरन जैन ध० प० श्री पद्मप्रसाद जैन एडवोकेट मेरठ (उ० प्र०)
३८. श्री प्रभा चन्द गोधा, सिविल लाइन, जयपुर (राज०)
३९. श्रीमती विमला देवी ध. प. श्री जिनेन्द्र प्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली-११०००१
४०. श्रीमती क्षमा देवी जैन, मधुवन, दिल्ली—११००९२
४१. श्रीमती कमला देवी ध० प० श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, थाणा (महा०)
४२. श्री अजीत प्रसाद जैन बब्बे जी, श्री राजकुमार श्रवणकुमार जैन, ताल कटोरा रोड लखनऊ
४३. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार, सुबोध कुमार जैन गंज बाजार सरधना (उ० प्र०)
४४. श्रीमती रतन सुन्दरी देवी ध० प० श्री वीर चन्द जैन, चिकन वाले लखनऊ (उ० प्र०)
४५. श्री अमितकुमार सुपुत्र डॉ० सुभाष चन्द जैन जोधपुर (राज०)
४६. श्रीमती आशा जैन ध० प० श्री प्रमोद कुमार जैन मुजफ्फरनगर वाले, रांची (बिहार)

बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन
सम्पादक

सविनय समर्पण

अर्पण है !
समर्पण है !
हे माँ !
केवल तेरी शिक्षा का
कुछ अंश ही तर्पण है
श्रद्धा है,
भक्ति है
केवल
तेरी शक्ति है
मैं कहाँ अमावस्या में जन्मी
और
तू है पूर्णिमा का चाँद
लेकिन
यह तेरी महानता ही है न !

कि
मुझे भी
अपने में मिला लिया,
निज रूप कर लिया
खुद ब्राह्मी बनकर,
मुझे चन्दना बनाया
एक तीर्थ ने
दूसरे को भी तीर्थ बनाया
बस !
विनय की अंजलियाँ
कतिपय शब्दांजलियाँ
तव चरणों में
अर्पण, अर्पण, अर्पण

—आर्यिका चन्दनामती

अवध की अनमोल मणि
गणिनी ज्ञानमती

पूज्य गणिनी आर्यिका श्री का परिचय निम्न चार पंक्तियों से प्रारम्भ होता है—

नैराश्यमद में डूबते, नर के लिए नव आस हो।
कोई अलौकिक शक्ति हो, अभिव्यक्ति हो विश्वास हो ॥

कलिकाल की नव ज्योति हो, उत्कर्ष का आभास हो।
मानो न मानो सत्य है, तुम स्वयं में इतिहास हो ॥

सच, जिनके आदर्श हिमालय पर्वत से भी ऊँचे हैं, जिनकी वाणी से निःसृत ज्ञानगंगा नीलनदी जिसकी लम्बाई ६ हजार कि०मी० है, से भी बड़ी है, जिसकी कीर्ति प्रसार के समक्ष एशिया महाद्वीप का क्षेत्रफल भी छोटा प्रतीत होने लगता है और जिनके हृदय की गम्भीरता प्रशान्त महासागर को भी उथला सिद्ध करने लगी है उस महान व्यक्तित्व 'श्री ज्ञानमती माता जी' का परिचय भला शब्दों में कैसे बांधा जा सकता है।

वि० सं० १९९१ [२२ अक्टूबर ईसवी सन् १९३४] की शरद पूर्णिमा [आश्विन शु० १५] को रात्रि में ९ बजकर १५ मिनट पर जिला बाराबंकी के टिकैतनगर ग्राम में श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जी की धर्मपत्नी मोहिनी देवी ने इस कन्या को जन्म देकर अपना प्रथम मातृत्व धन्य कर लिया था। उनके दाम्पत्य जीवन की बगिया का यह प्रथम पुष्प सारे संसार को अपनी मोहक सुगंधि से सुवासित करेगा यह बात तो वे कभी सोच भी न सके थे किन्तु सरस्वती के इस अवतार को जन्म देने में उनके जन्म जन्मान्तर के संचित पुण्य कर्म ही मानो सहायक बने थे।

अवध प्रान्त में जन्म लेने वाली इस नारीरत्न का परिचय बस यही

तो है कि सरयू नदी की एक बिन्दु आज ज्ञान की सिन्धु बन गई है, शरद पूर्णिमा का यह चांद आज अहर्निश सारे संसार को सम्यग्ज्ञान के दिव्य प्रकाश से आलोकित कर रहा है।

बालिका का जन्म का नाम रखा गया—मैना! मैना पक्षी की भाँति मधुरवाणी जो घर से निकलकर गली-मोहल्ले और सारे नगर में गुंजायमान होने लगी थी। पूर्व जन्मों की तपस्या एवं माँ की घूंटी से जो नैसर्गिक धर्म-संस्कार प्राप्त हुए थे उन्होंने किशोरावस्था आते ही इन्हें ब्राह्मी और चन्दना का अलंकरण पहना दिया।

परिवार में प्रथम कन्या के जन्म से सभी हर्षित थे। कन्या के जन्मते ही प्रसूति गृह में फैले अलौकिक प्रकाश को देखकर बूढ़ी दादी के मुँह से निकला कि अवश्य ही आज मेरे घर में कन्या के बहाने कोई देवी ने अवतार लिया है। बस आशीर्वाद की फुलझड़ियाँ वृद्धा के मुख से फूट पड़ीं—इसी प्रकाश से सदैव प्रकाशित रहे मेरी नन्हीं बेटी, मेरी बहू का प्रथम पुष्प चिरंजीवी हो तथा उसकी सुगंधि से दोनों कुल सुवासित होवें इत्यादि।

इधर अपनी नन्हीं कली के जन्म की विशेषताओं को सुनकर माँ मोहिनी भी अपनी प्रसव पीड़ा भूलकर अपने अतीत और भविष्य का चिन्तन कर रही थीं। वे भी अपनी सासू जी का आशीर्वाद प्राप्त करके कहने लगीं—माताजी! मैं तो इसे अपने पूज्य पिताजी का प्रसाद समझती हूँ। क्योंकि उन्होंने मुझे विदा करते समय एक अमूल्य दहेज जो दिया था—"पद्मनंदिपंचविंशतिका"। मैंने विवाह के बाद प्रतिदिन उस ग्रन्थ का स्वाध्याय कर करके न जाने कितनी शुभ भावनाएँ भायी थीं, उसी के फलस्वरूप मुझे यह कन्यारत्न प्राप्त हुई है।

कन्या के जन्म पर भी पुत्र जन्मोत्सव जैसी खुशियाँ मनाई गईं। पिता छोटेलाल जी भी अपनी सन्तान की प्रशंसा सुन-सुनकर फूले नहीं समाते थे।

नामकरण :—

महमूदाबाद में कन्या के नाना श्री सुखपालदास जी ने अपनी बेटी की प्रथम पुत्री का नाम रखा—मैना! तभी नानी के मुँह से सहसा निकल पड़ा कि "कहीं मैना के समान उड़ न जावे"। उस समय तो उनकी बात हँसी में उड़ा दी गई, किन्तु भविष्य में हुआ ऐसा ही।

काम भी नाम के अनुसार ही :—

कौन जानता था कि एक छोटे से ग्राम में जन्मी इस बालिका में एक दिन इतना साहस प्रगट हो जाएगा कि सारे संसार में अपनी प्रतिभा के द्वारा "टिकैतनगर" का नाम अमर कर देगी। किन्तु संसार में एक लोकोक्ति है " फूल अपनी सुगन्धि दशों दिशाओं में बिखेरने के लिये दूसरों की खुशामद नहीं करते, बादल कभी मोर के पास अपना कमीशन एजेन्ट नहीं भेजते हैं कि हम आकाश के आंगन में छा गए हैं तुम थिरको और नाचो। फूल खिलते हैं वातावरण स्वयं महक उठता है, बादल छाते ही मोर नाचने लगते हैं। उसी प्रकार महानता किसी के दरवाजे पर कभी प्रचार, प्रसार या प्रशंसा की भींख मांगने नहीं जाती, यह सब तो स्वयमेव उसकी झोली में आ गिरते हैं। महानता, गुरुता और गुणों की पूज। अर्चना की व्यवस्था सदियों से प्रकृति करती चली आ रही है।

पूज्य ज्ञानमती माताजी भी उन्हीं महान आत्माओं में से एक है जिनकी गुण सुरभि से सम्पूर्ण जगत सुगन्धि प्राप्त कर रहा है। समय के सूक्ष्म तन्तुओं ने उस बाल प्रतिभा को निखारना प्रारम्भ किया, माता के द्वारा पिलाई गई जन्मघूंटी से मैना का धार्मिक स्वास्थ्य वृद्धिगत होने लगा और वह अपने यौवन की पगडंडी पर कदम रखने लगो।

मैना अपने प्रारंभिक जीवन के सत्रह वर्षों को पूर्ण कर अट्ठारहवें वर्ष में प्रवेश कर रही थी, इसके साथ ही वह नारी जीवन के चरमलक्ष्य को भी सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील थी जबकि माता-पिता एवं समस्त परिवार अपनी उस गुणवन्ती कन्या के हाथ पीले करने के समस्त उद्यम कर चुके थे।

पूर्णा तिथि की प्रतीक :—

शरद पूर्णिमा तिथि तो प्रतिवर्ष आती और जनश्रुति के अनुसार अमृत बरसाकर चली जाती थी किन्तु सन् १९३४ की शरद पूर्णिमा ने धरती पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी और मानों यहाँ के निवासियों से यह कहकर चली गई कि इस पूर्णिमा के चाँद के समक्ष मेरी शीतल रश्मियाँ भी व्यर्थ हैं, मैंने स्वयं भी अब इस चन्द्रमा से अमृत ग्रहण करने का निर्णय किया है जिसने मुझे भी धन्य और अमर कर दिया है, क्या मैं इनका उपकार जन्म-जन्म में भी भूल सकती हूँ ? अर्थात् अब इस अवनी-तल पर "पूर्णा तिथि की प्रतीक" कन्यारत्न के जन्म ने शरद पूर्णिमा

तिथि को अक्षय पद प्राप्त करा दिया जिसे युगों-युगों तक कोई मिटा नहीं सकता।

स्वप्न भी होनी को बताने आया :—

महापुरुषों के भविष्य को बताने हेतु शुभ-अशुभ स्वप्नों का दिग्दर्शन भी हुआ करता है। जैसे भगवान ऋषभदेव को आहार देने से पूर्व हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने भी सुमेरु, कल्पवृक्ष आदि सात स्वप्न देखे थे। नारी इतिहास को प्रारम्भ करने वाली मैना ने भी रात्रि के पिछले प्रहर में एक स्वप्न देखा—

"मैं पूजन की थाली लेकर मंदिर जा रही हूँ, मेरे साथ आकाश में चन्द्रमा और नीचे उसकी शुभ्र चाँदनी पीछे-पीछे चल रही है, सभी नर-नारी मुझे आश्चर्यचकित हो देख रहे हैं।"

त्याग के लिए मैना का अन्तरंग पुरुषार्थ तो चल ही रहा था, इस स्वप्न ने उन्हें संबल प्रदान किया और प्रातःकाल मैना सोचने लगी—मेरी विजय अवश्य होगी। किन्तु युग में चल रही नारी की परतन्त्रता देखकर परिवार के समक्ष कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। फिर भी उन्होंने अपनी माँ से अपना अडिग संकल्प कई बार बताया था। अतः घर में चर्चा तो फैल ही चुकी थी।

पिता का आश्वासन :—

पुत्री के त्याग की प्रबल भावना को देखकर एक दिन पिता ने कहा, बेटी ! मैंने सुना है श्री सम्मेद शिखर सिद्ध क्षेत्र पर इन दिनों एक बड़ा मुनि संघ विराजमान है। उसमें कई एक आर्यिकायें भी हैं हम तुम्हें वहां ले चलेंगे"। अब क्या था मैना ने तो वहां ले चलने के लिए धुन ही लगा दी तब पिता "कुछ दिन बाद ले चलेंगे" ऐसा कह-कहकर सान्त्वना देते रहे और समय निकालते रहे चूँकि मोह का उदय भला पुत्री को कैसे भेज सकता था ?

कुमारिकाओं की पथ प्रदर्शिका :—

कन्या के अधिकारों का मूल्यांकन कराने वाली मैना ने जीवन के मधुमास में प्रवेश करने से पूर्व ही नारी उद्धार का संकल्प लिया और स्वयम्भू होकर उसकी पूर्ति के सपने संजोने लगीं। न जाने कहाँ से ऐसी-

ऐसी बातें ये सीखकर आई थीं क्योंकि तब तक तो इन्हें किसी गुरु का संयोग भी प्राप्त नहीं हुआ था।

माता मोहिनी तो तब दंग रह जाती जब मैना की सखियाँ उनसे कहतीं कि आज हमें मैना ने शीलव्रत पालन का नियम मंदिर में दिलवाया है। अन्ततोगत्वा वि० सं० २००८ [ईसवी सन् १९५२] में भारत गौरव आचार्य रत्न श्री देशभूषण जी महाराज के मंगल सानिध्य में शरद पूर्णिमा के ही दिन बाराबंकी में उनकी हार्दिक इच्छा की सम्पूर्ति की, जिसके फलस्वरूप मैना का मधुमास सप्तम प्रतिमा रूप आजन्म ब्रह्मचर्य में परिवर्तित हो गया।

उस समय उन्होंने पारिवारिक एवं सामाजिक संघर्षों को झेलकर अपनी ही नहीं प्रत्युत् समस्त कुमारिकाओं के हाथों में जकड़ी परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़कर असीम साहस और वीरता का परिचय दिया था। इनसे पूर्व बीसवीं शताब्दी की किसी कन्या ने इस कंटीले मार्ग पर कदम नहीं बढ़ाया था इसीलिये इन्हें "कुमारिकाओं की पथ प्रदर्शिका कहने में हम सभी गौरव का अनुभव करते हैं।

वीर की अतिशय भूमि पर बनी वीरमती आप :—

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेने के पश्चात् ब्रह्मचारिणी कु० मैना मात्र एक श्वेत साटिका में लिपटी आर्यिका की भाँति आचार्य श्री के संघ में रहने लगीं। इनके साथ लखनऊ की एक ब्रह्मचारिणी चाँदबाई भी थीं। तभी संघ अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी पर पहुँचता है और वहीं मैना की क्षुल्लिका दीक्षा का मुहूर्त निकाला जाता है।

अभी विक्रम संवत् २००९ ही चल रहा था कि ईसवी सन् १९५३ में प्रविष्ट हुआ जब महावीर जी में होली का दीर्घकाय मेला लगा हुआ था उसी समय माता-पिता को सूचित किये बिना मैना ने चैत्र कृष्णा एकम् को क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर ली। आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने मैना की वीरता और वीर प्रभु की अतिशय भूमि पर दीक्षा होने के कारण शिष्या का नाम "क्षुल्लिका वीरमती" रक्खा। तभी बालसती क्षुल्लिका वीरमती की जयकारों से अतिशय क्षेत्र का अतिशय द्विगुणित हो गया। अब यहाँ से दो वीरों का इतिहास जुड़ गया—एक तीर्थंकर महावीर का और दूसरा श्री वीरमती जी क्षुल्लिका का।

कहाँ से कहाँ ? :—

मुनिराज सुकुमाल की भाँति एक कोमलांगी सुकुमारी साध्वी के रूप में आचार्य संघ के साथ पद विहार करने लगी। पैरों से टपकती खून की धार तथा पूर्व की अनभ्यासी तीव्र गति चाल से उत्पन्न हृदय की धड़कनों को न वहां कोई पहचानने वाला ही था और न बताने वाला। क्षुल्लिका वीरमती जी सोचती थीं कि मैंने किसी मजबूरी या दूसरे की जबर्दस्ती से तो दीक्षा ली नहीं है, पूर्णस्वेच्छा से ली गई उस दीक्षा से वे कभी खेदखिन्न नहीं हुई। अपने तीव्रतम वैराग्यपूर्वक ली गई उस क्षुल्लिका दीक्षा से भी वे पूर्ण सन्तुष्ट कहां थी, उन्हें तो नारी जीवन के उच्चतम शिखर स्वरूप आर्यिका दीक्षा लेने की पुनः धुन लग गई।

नीचे धरती माता और ऊपर आकाश रूपी पिता के संरक्षण में रहती हुई आज की ज्ञानमती माताजी ने क्षुल्लिका अवस्था में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज के साथ दो चातुर्मास किये जिसमें सन् १९५३ का उनका प्रथम चातुर्मास उनकी जन्मभूमि टिकैतनगर में हुआ और दूसरा सन् १९५४ का चातुर्मास जयपुर में हुआ जहां उन्होंने मात्र २ माह में संस्कृत की कातन्त्र रूपमाला व्याकरण पढ़कर अपने सतमंजिले ज्ञान महल की मजबूत नींव डाली। टिकैतनगर में उन्हें दक्षिण से आई हुई एक क्षुल्लिका विशालमती जी का समागम प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री के समक्ष क्षुल्लिका वीरमती जी यदा कदा अपनी आर्यिका दीक्षा के लिए निवेदन किया करती थीं किन्तु आचार्यश्री कहते थे—बेटा ! अभी तक मैंने किसी को आर्यिका दीक्षा प्रदान नहीं की है तथा मेरे साथ तुम्हें बहुत अधिक चलना पड़ेगा क्योंकि मैं तेज चाल से प्रतिदिन ३०-४० किमी० चलता हूँ। तुम अत्यन्त कमजोर और इस लघुवय में इतना नहीं चल सकती हो। हाँ, यदि तुम्हें आर्यिका दीक्षा लेनी ही है तो चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी के शिष्य आचार्यश्री वीरसागर महाराज के संघ में मैं तुम्हें भेज दूँगा। वहां सुना है वृद्धा आर्यिकाएँ हैं और वे विहार भी थोड़ा-थोड़ा करते हैं अतः वहाँ तुम ठीक से रह सकोगी।

दूसरे संघ से अपरिचित और गुरु वियोग की बात से यद्यपि वीरमती जी कुछ दुःखी हुईं, किन्तु और कोई चारा भी तो नहीं था उनके समक्ष आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने का। खैर ! संयोग-वियोग को सरलता

से सहन करना तो उन्होंने जन्म से ही सीख लिया था क्योंकि अपने दो वर्षीय भाई रवीन्द्र को जो उनके बिना सोता ही नहीं था जीजी की धोती पकड़कर, अंगूठा चूसकर ही जिसकी सोने की आदत थी उसे किस निर्ममता पूर्वक छोड़कर आई थीं। जब छोटा भैय्या चारपाई पर सो ही रहा था इन्होने अपनी धोती धीरे से खींचकर उसके पास दूसरा कपड़ा रख दिया जिसे जीजी की धोती समझकर वह चूसता रहा और निद्रा के हिलोरे लेता रहा। उस मासूम को हमेशा के लिए छोड़ते हुए एक आंसू भी तो इनकी आँखों में नहीं आया था। २२ दिन की बहन मालती को शायद बाह्य स्नेहवश माँ से लेकर थोड़ा सा प्यार किया और भाईयों के राखी बँधवाई चूँकि रक्षा बन्धन का पावन दिवस था। फिर चल दी थीं बाराबंकी की ओर देशभूषण महाराज को अपना पाठ सुनाने। क्या किसी को उस दिन यह पता भी चल सका था कि मेरी बेटी, मेरी बहना, मेरी पोती और मेरी भतीजी अब कभी हमें माँ, भाई, दादी, चाचा आदि कहने इस घर में आएगी ही नहीं।

उस १८ वर्ष प्राचीन जन्मजात वियोग के समक्ष दो वर्षों से प्राप्त गुरु सान्निध्य का वियोग तो शायद कुछ भी नहीं होगा। हो भी तो वीरमती जी का वैरागी हृदय उसे कब स्थान देने वाला था उसे तो अपनी मंजिल पर पहुँचना जो था।

एक दिन सुना, "चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागर महाराज कुन्थलगिरि पर्वत पर यम सल्लेखना ले रहे हैं तब ये आतुर होकर गुरु आज्ञापूर्वक क्षुल्लिका विशालमती जी के साथ उस जीवन्त तीर्थ के दर्शनार्थ निकल पड़ीं और दक्षिण भारत के 'नीरा' ग्राम में पहुँचकर युग प्रमुख आचार्यश्री के प्रथम दर्शन किये।

क्षुल्लिका विशालमती जी से इनका परिचय सुनकर वे करुणा के सागर आचार्यश्री बहुत प्रसन्न हुए और 'उत्तर की अम्मा' कहकर इन्हें कुछ लघु सम्बोधन प्रदान किए। क्षुल्लिका वीरमती जी तो मानो यहाँ साक्षात् तीर्थङ्कर भगवान् महावीर की छत्रछाया पाकर कृतार्थ ही हो गई थीं। बार-बार गुरुदेव की पदरज मस्तक पर चढ़ाती हुई उनकी गुरु भक्ति अन्तर्हृदय की पावनता दर्शा रही थी। कुछ देर की मूक भक्ति के पश्चात् वेदना की शब्दावलियाँ फूटती हैं जो गुरुवर्य से चिरकालीन भव भ्रमण कथा कह देना चाहती हैं किन्तु वीरमती जी उन्हें अपने एक वाक्य में समेटकर व्यक्त करती हैं—

'हे संसार तारक प्रभो ! मैं आपके करकमलों से आर्यिका दीक्षा लेना चाहती हूँ।'

अनुकम्पा की साक्षात् मूर्ति आचार्यश्री की देशना मिली—

अम्मा ! मैंने अब दीक्षा देने का त्याग कर दिया है, मैं समाधि ग्रहण करने कुन्थलगिरि जा रहा हूँ। तुम मेरे शिष्य मुनि वीरसागर जी के पास जाकर आर्यिका दीक्षा प्राप्त करो मेरा तुम्हें पूर्ण आशीर्वाद है।

आशा की किरणावलियाँ फूटीं वीरमती जी के हृदयांगन में। और उन्होंने आर्यिका दीक्षा से पूर्व महामना, उपसर्ग विजयी चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री का पण्डित मरण देखने का निर्णय किया। अतः सन् १६५५ का चातुर्मास क्षुल्लिका विशालमती जी के साथ महाराष्ट्र प्रान्त के "म्हसवड़" नगर में किया।

दो अविस्मरणीय उपलब्धियाँ—

२० वर्षीय क्षुल्लिका वीरमती जी से जहाँ म्हसवड़ की आम जनता अतिशय प्रभावित रही, वहीं यहाँ उन्हें दो शिष्याओं का लाभ मिला—कु० प्रभावती जो वर्तमान में आर्यिका श्री जिनमती जी हैं और सौ० सोनूबाई जिन्होंने आर्यिका पद्मावती बनकर मासोपवास करके सन् १६७१ में उत्तम समाधिमरण प्राप्त किया। यह तो रही शिष्याओं की प्रथम उपलब्धि और दूसरी उपलब्धि उनके ज्ञान सूर्य की प्रथम किरण यहीं प्रस्फुटित हुई। उन्होंने अपने व्याकरण ज्ञान का प्रयोगात्मक उपयोग यहाँ "जिनसहस्रनाम मन्त्र" की रचना से किया। भगवान् के एक हजार नामों में चतुर्थी विभक्ति लगाकर नमः शब्द के साथ उनकी ज्ञान प्रतिभा एकदम निखर उठीं।

क्षुल्लिका विशालमती जी ने तत्काल ही व्रत विधि सहित उन मन्त्रों को लघु पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया। आज ज्ञानमती माताजी की प्रथम साहित्यिक कृति 'जिनसहस्रनाम मन्त्र' का नाम लेते ही मेरे मन में अमिट विश्वास जम गया है कि जिस लेखनी का शुभारम्भ ही श्री जिनेन्द्र के एक हजार आठ नामों से हुआ हो उसके द्वारा डेढ़ दो सौ ग्रन्थ लिखा जाना कोई विशेष बात नहीं है। यदि माताजी के पास उत्तम स्वास्थ्य और साधु क्रियाओं में व्यतीत होने वाला समय और अधिक मिल जाता तो निश्चित ही ग्रन्थों की संख्या हजार तक पहुँचने में देर न लगती।

वीरमती से ज्ञानमती—

म्हसवड़ चातुर्मास के मध्य ही जब उन्होंने सुना कि आचार्यश्री ने कुन्थलगिरि में यम सल्लेखना ले ली है, तब वे क्षुल्लिका विशालमती जी के साथ वहाँ अन्तिम दर्शन करने और समाधि देखने पहुँच गईं। द्वितीय भादों शुक्ला दूज को आचार्यश्री ने बड़े ही शान्तिपूर्वक "ॐ सिद्धाय नमः" मन्त्र ध्वनि बोलते एवं सुनते-सुनते अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। उस समय पूरे एक माह तक क्षुल्लिका वीरमती जी को वहाँ रहने का सौभाग्य मिला। इस मध्य गुरुदेव के मुख से दो-चार लघु अनमोल शिक्षाएँ भी प्राप्त हुईं।

पुनः म्हसवड़ का चातुर्मास सम्पन्न करके वीरमती जी अपनी उभय शिष्याओं के साथ जयपुर (खानियां) में विराजमान आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज के संघ में पहुँची। गौरवर्णी, लम्बे कद और प्रतिभा सम्पन्न लघु वयस्क व्यक्तित्व को देखकर आचार्यश्री एवं समस्त साधु-साध्वी आश्चर्य चकित थे। मूलाचार ग्रन्थानुसार पहले तो सब तरफ से गुप्त रीत्या क्षुल्लिका वीरमती जी की परीक्षाएँ हुईं किन्तु साधु-साध्वी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी सभी तो एक स्वर से इन्हें प्रथम श्रणी का प्रमाण-पत्र देते हुए यही कह रहे थे—अरे! यह तो साक्षात् सरस्वती हो प्रतीत हो रही है। प्रातः ३ बजे से उठकर रात्रि के १० बजे तक यह न तो पुस्तकों का पीछा छोड़ती है और न ही अपनी शिष्याओं को चैन लेने देती है—हर वक्त उन्हें ज्ञानाराधना में व्यस्त रखती हैं। इसके साथ ही सामायिक, प्रतिक्रमण और स्वाध्याय आदि समस्त क्रियाएँ शास्त्रोक्त समयानुसार करती हैं। किसी भी पाठ के लिए इन्हें पुस्तक देखने की भी तो जरूरत नहीं है। पूरा दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण आदि भी कण्ठस्थ है। आखिर इसे पूर्व जन्म का संस्कार माना जाय या इस जन्म की तपस्या एवं सतत ज्ञानाराधना का फल।

कुछ भी हो, आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज ने एक कुशल जौहरी की भाँति इस हीरे को परखा और शीघ्र ही इन्हें आर्यिका दीक्षा प्रदान करने का निर्णय लिया। संघ अब जयपुर से विहार करके राजस्थान के "माधोराजपुरा" नगर में पहुँचा तब वहीं वि० सं० २०१३ (सन् १९५६) में वैशाख वदी दूज के शुभ मुहूर्त में क्षुल्लिका वीरमती जी को आचार्य श्रीवीरसागर जी महाराज ने आर्यिका दीक्षा प्रदान कर "ज्ञानमती" नाम से सम्बोधित किया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी की

प्रथम ज्ञानमती को जन्म दिया आचार्यश्री वीरसागर जी ने। जो नाम कबीरदास जी के निम्न दोहे को असत्य साबित कर रहा है—

रंगी को नारंगी कहें, कहें तत्त्व को खोया।
चलती को गाड़ी कहें, देख कबीरा रोया॥

अर्थात् सार्थक नामधारी ज्ञानमती माताजी को यदि कबीरदास जी देख लेते तो शायद उनके रोने की नौबत न आती।

आचार्यश्री ने अपनी नवदीक्षित शिष्या को अधिक शिक्षाएं देने की आवश्यकता भी नहीं समझी। उनकी एक वाक्य की लघु शिक्षा ने ही ज्ञानमती माताजी के अन्दर पूर्ण आलोक भर दिया - ज्ञानमती जी ! मैंने जो तुम्हारा नाम रखा है उसका सदैव ध्यान रखना। बस, इसी शब्द ने आज माताजी को श्रुतज्ञान के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। जहाँ आध्यात्मिक आनन्द के समक्ष शारीरिक अस्वस्थता भी नगण्य प्रतीत होने लगी है।

नये गुरुदेव और अपने नये नाम के साथ आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का नवजीवन प्रारम्भ हुआ। आचार्य संघ पुनः विहार करता हुआ कुछ दिनों के बाद जयपुर खानियाँ में ही आ गया, वहीं सन् १९५६ का वर्षायोग सम्पन्न हुआ। अपनी शारीरिक शिथिलता के कारण आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज ने उसके पश्चात् जयपुर शहर के सिवाय विहार कहीं नहीं किया। वे मितभाषी एवं स्वाध्याय प्रेमी थे। शाम को प्रतिक्रमण के पश्चात् शिष्यों के सुख-दुःख सुनकर किञ्चित मुस्कराहट में उन सबका दुःख दूर कर दिया करते थे। वे कभी-कभी कहा करते—मुझे दो रोग सताते हैं। शिष्यगण उत्सुकतावश गुरुवर के दुःख जानने को आतुर होते, तभी उनकी मुस्कराहट बिखरती और वे कहते—एक तो नींद आती है और दूसरी भूख लगती है। इन दो रोगों से तो सभी संसारी प्राणी ग्रस्त हैं अतः उनकी बात पर शिष्यों को हँसी आ जाती और वे अपना भी दुख दर्द भूल जाते।

सच, गुरु के लिए तो यह पंक्तियाँ सार्थक ही सिद्ध होती हैं—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज की छत्रछाया में उनकी नई शिष्या आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी को माता-पिता एवं गुरु का स्नेह प्राप्त हो रहा था। गुरुदेव की शिथिलता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी अतः सन् १९५७ का चातुर्मास भी जयपुर खानिया में ही रहा। पूज्य ज्ञानमती माता जी कई बार अपने गुरुवर के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त करती हुई बताती हैं कि महाराज, हमेशा धवला की पुस्तकों का स्वाध्याय किया करते थे और कहा करते थे कि भले ही इसमें कुछ विषय समझ में नहीं आते हैं किन्तु पढ़ते रहने से अगले भवों में अवश्य ही ज्ञान का फल प्राप्त होगा।

चातुर्मास चल रहा था तभी आश्विन कृ० अम वस्या को आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज मध्याह्न के लगभग ११ बजे समाधि लगाकर पद्मासन में बैठ गए और उनकी आत्मा इस जीर्ण शरीर से निकलकर देव लोक चली गई।

गुरु वियोग से दुखी चतुर्विध संघ ने वहीं पर अपना नया संघनायक चुना। संघ के सर्ववरिष्ठ मुनिराज श्री शिवसागर जी महाराज इस परम्परा के द्वितीय पट्टाचार्य बने और संघ का कुशलता पूर्वक संचालन किया।

गुरुता से लघुता भली—

आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी गुरुदेव के मरणोपरान्त भी आचार्य श्री शिवसागर महाराज के संघ में रहीं और उनकी आज्ञा से कई मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, आदिकों को विविध धर्मग्रन्थों का अध्ययन कराया। किन्तु उन्होने अपनी इस गुरुता को कभी प्रगट नहीं किया। किसी मुनि के द्वारा यह कहने पर कि "ज्ञानमती माताजी मेरी शिक्षा गुरु हैं" वे बड़ा दुःख महसूस करतीं और कहतीं कि महाराज! मैं तो आप सबके साथ स्वाध्याय करती हूँ न कि पढ़ाती हूँ। यह उनके हृदय की महानता ही थी, वे हमेशा कहा करती हैं कि गुरुता के भार से व्यक्ति दबता जाता है और लघुता से तराजू के खाली पलड़े की भांति ऊपर उठता जाता है।

धन्य है उनका व्यक्तित्व जिन्होंने गुरु बनकर भी गुरुता स्वीकार नहीं की इसीलिए आज उन्होंने सम्पूर्ण भारतीय जैन समाज में सर्वोच्च विदुषी पद को प्राप्त कर लिया है। उनकी अध्यापन शैली भी इतनी

सरल और रोचक है कि हर जनमानस बिना कठिन परिश्रम किए हर विषय समझ सकता है। अध्ययन काल में शिष्यों को शास्त्री विषय के माध्यम से उनके द्वारा न जाने कितनी अमूल्य व्यावहारिक शिक्षाएँ भी प्राप्त हो जाती हैं, यह उनके वैदुष्य का सबल प्रमाण है।

सन् १९५७ से सन् १९६२ तक माताजी इसी आचार्य संघ में रहीं। इस मध्य अपनी आर्यिका पद्मावती जी, आर्यिका जिनमती जी, आर्यिका आदिमती जी, आर्यिका श्रेष्ठमती जी, आर्यिका संभवमती जी आदि को आचार्य श्री शिवसागर महाराज के करकमलों से दीक्षा दिलवाई। सन् १९६१ में सीकर चातुर्मास के अन्तर्गत ब्र० राजमल जी को अनेक प्रेरणाएँ देकर मुनि दीक्षा के लिए उत्साहित किया जो वहीं मुनि श्री अजितसागर बने। भविष्य में वे इस परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य चतुर्विध संघ की सहमति से बने हैं।

आर्यिका संघ की मंगलमयी तीर्थयात्रा

ईसवी सन् १९६२ (वि० सं० २०१९) के लाडनूं चातुर्मास के पश्चात् आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने गुरुभाई आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज की आज्ञा लेकर चार आर्यिका एवं एक क्षुल्लिका का संघ लेकर सम्मेद शिखर और गोम्मटेश्वर यात्रा के लिए विहार किया। इस आर्यिका संघ का सर्वप्रथम चातुर्मास सन् १९६३ (वि० सं० २०२०) में कलकत्ता महानगरी में हुआ।

श्री ज्ञानमती माताजी ही इस संघ की प्रमुख बड़ी आर्यिका थीं शेष सभी तो उनके द्वारा हस्तावलंबन को प्राप्त संसार कर्दम से निकली शिष्याएँ थीं अतः माताजी को ही संघ जिम्मेदारी का सारा भार वहन करना पड़ता। इनकी प्रवचन कला तो प्रारम्भ से ही आकर्षक रही है। आगम में छिपे रहस्यों को रोचक शैली से प्रवचन में उद्घाटित करतीं तब हर्षातिरेक में कई विद्वान श्रावक तो इन्हें श्रुतकेवली की संज्ञा प्रदान कर भी तृप्त न होते थे।

शुद्ध जल का नियम दिलाकर आहार लेने पर भी चौकों की भर-मार रहती और क्यू लाइन लगवाकर लोग १-१ ग्रास आहार दे पाते। आहार में मीठा, नमक, तेल, दही आदि रसों का त्याग ही था, प्रायः एक अन्न या दो अन्न मात्र ग्रहण करतीं थीं। अतः उनके नीरस और अल्पाहार को देखकर सबको आश्चर्य होता और वे सोचने को मजबूर हो जाते कि

माताजी इतना परिश्रम कैसे कर लेती हैं, कहाँ से शक्ति आती है ? किन्तु ज्ञानमती माताजी के जीवन का एक छोटा सा सूत्र समस्त साधु समाज के लिए अनुकरणीय है—

"जैसे गाय घास खाकर मीठा दूध देती है उसी प्रकार साधु रूखा-सूखा भोजन करके समाज को धर्मामृत प्रदान करते हैं। इसीलिए साधुओं की वृत्ति "गोचरीवृत्ति" कही गई है।"

इसी सूत्र को सार्थक करती हुई आर्यिका श्री ने अपने कमजोर औदारिक शरीर से कठोर परिश्रम कर संसार को अथाह ज्ञानामृत पिलाया है। इसी तरह हैदराबाद, श्रवलबेलगोल, सोलापुर और सनावद में किए गए आपके चातुर्मास भी ऐतिहासिक रहे हैं।

कतिपय उपलब्धियाँ

सन् १९६३ में कलकत्ते से आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी की गृहस्थावस्था की सुपुत्री कु० सुशीला को अनेक संघर्षों के मध्य घर से निकाला और सन् १९७४ में दिल्ली में आचार्य श्री धर्मसागर जी से दीक्षा दिलाकर "आर्यिका श्रुतमती" बनाया। जो वर्तमान में पू० ज्ञानमती माताजी की शिष्या आर्यिका श्री आदिमती माताजी के पास हैं।

सन् १९६४ (वि० सं० २०२१) आन्ध्र प्रदेश के हैदराबाद शहर में आर्यिका संघ के चातुर्मास के मध्य आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी गम्भीर रूप से बीमार हुईं। वहाँ की स्थानीय समाज ने भरपूर सेवा की, वैद्यराज जी भी कलकत्ते से आए उनका इलाज चला। इसी बीच संघस्थ ब्र० कु० मनोवती ने माताजी से ही दीक्षा लेने का आग्रह किया। यहाँ एक अचम्भे और हंसी की बात है कि दीक्षा का नाम सुनते ही माताजी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। हैदराबाद की जनता आश्चर्यचकित थी, वैद्य जी की औषधि से अधिक आरोग्यता तो उन्हें दीक्षा के नाम से प्राप्त हो गयी थी। कोई सोच नहीं सकता था कि इस कमजोर हालत में माताजी पांडाल तक जाकर मनोवती का दीक्षा संस्कार कर पाएँगी किन्तु श्रावण शुक्ला सप्तमी तिथि को माताजी स्वयं चलकर पांडाल तक पहुँची तथा अपनी गृहस्थावस्था की लघु बहन कु० मनोवती को विशाल जनसमूह के मध्य क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान किया और "अभयमती" नाम घोषित किया। आन्ध्र प्रान्त में जैन दीक्षा का यह प्रथम अवसर था जो वहां के इतिहास का अविस्मरणीय पृष्ठ बन गया।

श्रवणबेलगोल गोम्मटेश्वर बाहुबली के इस ऐतिहासिक तीर्थ पर सन् १९६५ (वि० सं० २०२२) के चातुर्मास ने तो आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी को एक ऐतिहासिक साध्वी का रूप प्रदान किया है। बाहुबली स्वामी के पादमूल में १५ दिन की अखंड मौनपूर्वक की गई ध्यान साधना ने उन्हें तेरह द्वीप के माध्यम से सब कुछ प्रदान कर दिया था। आगे चलकर यह तेरह द्वीप मात्र एक जम्बूद्वीप के रूप में परिवर्तित हुआ हस्तिनापुर की पावन वसुन्धरा पर। जिसे दक्षिण उत्तर का सेतु मानकर सारे देश के तीर्थयात्री तो देखने आते ही हैं विदेशों से भी अनेक पर्यटक इस दर्शनीय स्थल को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

बाहुबली की इस अमूल्य देन के साथ ही श्रवलबेलगोल के एक श्रेष्ठी श्री जी० वी० धरणेन्द्रैय्या की सुपुत्री कु० शीला को गृह कारावास से निकालकर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत दिया तथा सन् १९७४ में आचार्य श्री धर्मसागर जी के करकमलों से आर्यिका दीक्षा दिलाई। वे आर्यिका शिवमती माताजी आज आपके पास ही रह रही हैं।

सन् १९६६ (वि० सं २०२३) सोलापुर के श्राविकाश्रम चातुर्मास में शिक्षण शिविरों के माध्यम से जो ज्ञान का अलख जगाया वह वहाँ के इतिहास का अविस्मरणीय पृष्ठ बन गया है। वहाँ की प्रमुख ब्रह्मचारिणी पद्मश्री सुमति बाई जी एवं ब्र० कु० विद्युल्लता जी शहा ने आज भी उन पावन स्मृतियों को हृदय में संजो रखा है।

सन् १९६७ (वि० सं० २०२४) में सनावद (म० प्र०) का चातुर्मास तो अद्यावधि जीवन्त है क्योंकि वहाँ के श्रेष्ठी श्री अमोलक चन्द सर्राफ के सुपुत्र ब्र० मोतीचन्द जो एवं उनके चचेरे भाई यशवन्त कुमार को अपना संघस्थ बनाकर पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी ने मोक्षमार्ग की अनेक अमूल्य शिक्षाओं से उनके जीवन बदल दिये। जिनमें से यशवन्त कुमार को मुनि वर्धमानसागर बनाने का श्रेय आपको ही है। ब्र० मोतीचन्द जी क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी के रूप में अद्यावधि आपकी छत्रछाया में जम्बूद्वीप संस्थान को अपनी कर्मभूमि के रूप में स्वीकार कर सतत ज्ञानाराधना में तत्पर हैं। जम्बूद्वीप रचना निर्माण ज्ञानज्योति प्रवर्तन तथा पूज्य माताजी के प्रत्येक कार्यकलापों में ब्र० मोतीचन्द जी की प्रमुख भूमिका होने के नाते सनावद चातुर्मास हस्तिनापुर के इतिहास से सदा के लिए जुड़ गया है।

पुनः संघीय मिलन

इस पंचवर्षीय भ्रमण योजना के पश्चात् आचार्य श्री शिवसागर महाराज की प्रबल प्रेरणावश ज्ञानमती माताजी अपने संघ सहित पुनः संघ में पधारीं। तब आचार्य संघ के साथ सन् १९६८ (वि० सं० २०२५) का चातुर्मास राजस्थान के "प्रतापगढ़" नगर में हुआ। अनन्तर अधिक दिनों तक श्री शिवसागर महाराज का सानिध्य न मिल सका क्योंकि सन् १९६९ में ही फाल्गुन कृ० अमावस्या को श्री शान्तिवीर नगर महावीर जी में आचार्य श्री का अल्पकालीन बीमारी से अचानक समाधिमरण हो गया। पुनः चतुर्विध संघ ने परम्परा के वरिष्ठ मुनिराज श्री धर्मसागर जी को तृतीय पट्टाचार्य मनोनीत किया और उन्हीं के सानिध्य में होने वाला पञ्चकल्याणक महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ तथा मुनि-आर्यिकाओं की ११ दीक्षाएँ भी उनके करकमलों से प्रथम बार सम्पन्न हुईं।

आचार्य श्री धर्मसागर जी के साथ भी

आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के लिए आचार्य श्री शिवसागर जी के समान ही धर्मसागर जी महाराज भी गुरु भाई थे क्योंकि ये भी आचार्य श्री वीरसागर महाराज द्वारा दीक्षित मुनि शिष्य थे।

होनहार की प्रबलता कहें या काल दोष, द्वितीय पट्टाचार्य श्री शिवसागर जी महाराज की समाधि के पश्चात् यह विशाल संघ २-३ टुकड़ों में बंट गया। आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज, अजितसागर जी, सुबुद्धिसागर जी, श्रेयांससागर जी आदि अनेक साधु तथा विशुद्धमती माताजी आदि कई आर्यिकाएँ संघ से अलग हो गए। किन्तु आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी नूतन आचार्य श्री के आग्रह पर उसी संघ में रहीं।

चतुर्मुखी प्रतिभा से सम्पन्न, अलग विहार एवं धर्म प्रभावना में कुशल तथा संघ की अपेक्षा अलग रहकर समाज को अधिक लाभ देने में सक्षम साधुगण प्रायः अपने दीक्षागुरु तक के अनुशासन में रहने में परतन्त्रता और कठिनाई का अनुभव करते हैं किन्तु माताजी प्रारम्भ से ही इस प्रकार के माहौल में रहने की अभ्यस्त रही हैं क्योंकि उनका तो लक्ष्यमात्र यही रहा कि "दीक्षा प्रभावना के लिए नहीं आत्मकल्याण के लिए ग्रहण की जाती है।"

सन् १९६९ (वि० सं० २०२६) में आचार्य श्री धर्मसागर जी के साथ ही माता जी का चातुर्मास भी जयपुर के बख्शी चौक में हुआ।

यहाँ मैंने प्रथम बार ज्ञानमती माता जी के दर्शन किये थे जिसकी आज भी मुझे पूरी स्मृति है। मैंने वहाँ देखा था कि माता जी दिन के छः घण्टे मुनि आर्यिका आदि को अष्टसहस्री, कातंत्रव्याकरण, राजवार्तिक आदि कई ग्रन्थों का अध्ययन कराती थीं। एक आचार्य संघ में साधुओं के शिक्षण की विधिवत् व्यवस्था का वह अनुकरणीय उदाहरण था। यह समुचित क्रम चला सन् १९७१ के अजमेर चातुर्मास तक। इससे पूर्व टोंक (राज०) में सन् १९७० का चातुर्मास भी आचार्य संघ के साथ ही माताजी ने किया।

घड़ी, दिन, महीने और वर्षों ने अब संघ की वृद्धि में भी चार चांद लगा दिए थे। अजमेर चातुर्मास के मध्य भी कई दीक्षाएं हुईं, जिसमें माताजी की गृहस्थावस्था की माँ मोहिनी देवी ने भी अपने विशाल परिवार का मोह छोड़कर आचार्यश्री धर्मसागर जी महाराज से आर्यिका दीक्षा ग्रहणकर 'रत्नमती' नाम प्राप्त किया था। मोइनिया इस्लामिया स्कूल के विशाल प्रांगण में ज्ञानमती माता जी ने अत्यंत निर्ममता पूर्वक अपनी माता का केशलोंच किया था। वहां की जनता रो रही थी परिवार बिलख रहा था हम सभी बच्चे मां की ममता पाने को तरस रहे थे किन्तु ज्ञानमती माता जी और बनने वाली रत्नमती माता जी के चेहरों पर अपूर्व चमक तथा प्रसन्नता थी जो कि संसारिक राग पर विजय श्री प्राप्त करने की बात स्पष्ट झलका रही थी। इसके बाद पुत्री और माता का सम्बन्ध गुरु और शिष्य में परिवर्तित हो गया था।

भारत की राजधानी दिल्ली में पदार्पण :—

अजमेर चातुर्मास के पश्चात् पुनः आचार्य संघ से कुछ साधुओं ने अलग-अलग विहार किया। संघस्थ मुनि श्री सुपार्श्व सागर जी के निर्देशन में कुछ मुनियों का संघ सम्मेद शिखर, बुन्देलखण्ड आदि तीर्थों की यात्रा हेतु निकला एवं आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी अपने आर्यिका संघ के साथ पीसांगन [राज०] से आचार्य श्री की आज्ञा लेकर ब्यावर पधारीं। ब्यावर में दिल्ली के कुछ गणमान्य व्यक्ति पूज्य माता जी के पास दिल्ली की ओर मंगल विहार करने हेतु प्रार्थना करने आये।

सन् १९७२ की महावीर जयन्ती के पश्चात् आर्यिका संघ का विहार दिल्ली की ओर हुआ। वैशाख, ज्येष्ठ मास की चिलचिलाती धूप में कभी-कभी २४-२५ कि०मी० भी चलना पड़ता। आर्यिका श्री रत्नमती

माता जी के जीवन में यह प्रथम पदयात्रा थी, वृद्धावस्था में इस लम्बे विहार के कारण उनके पैरों में सूजन आ गई अतः डोली की व्यवस्था भी की गई। पूज्य माता जी के इस प्रवास में लघुवयस्क दो मुनिराज [मुनि श्री संभवसागर मुनि श्री वर्धमान सागर] भी थे जो कि प्रारम्भ में माता जी के ही शिष्य रहे थे और माता जी की प्रेरणा से ही मुनि बने थे वे लोग सन् १९७५ तक साथ में रहे।

आर्यिका संघ का मंगल पदार्पण आषाढ़ शु० ११ को पहाड़ी धीरज पर हुआ और सन् १९७२ का चातुर्मास पहाड़ी धीरज की "नन्हेंमल घमण्डीलाल जैन धर्मशाला" में सम्पन्न हुआ। दिल्ली में आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का यह प्रथम चातुर्मास अपने आप में ऐतिहासिक रहा क्योंकि "दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान" की स्थापना सन् १९७२ में ही पहाड़ी धीरज पर हुई जिसके माध्यम से आज देश-विदेश में विस्तृत धर्म प्रभावना हो रही है। हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण, ग्रन्थों का प्रकाशन, सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का संचालन, पूरे देश में शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों एवं राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों के आयोजन आदि विभिन्न कार्यक्रम इसी रजिस्टर्ड संस्थान द्वारा हस्तिनापुर कार्यालय से संचालित किए जाते हैं।

पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव में सानिध्य—

ईसवी सन् १९७४ में भगवान महावीर स्वामी का पच्चीस सौवाँ निर्वाण महोत्सव राष्ट्रीय स्तर पर मनाया गया जिसमें पूज्य आर्यिका श्री की पावन प्रेरणा एवं अथक प्रयासों से दिल्ली वासी आचार्यश्री धर्म सागर महाराज के विशाल संघ को दिल्ली लाए। उस समय तक दिल्ली की जनता को भय था कि यहाँ इतने बड़े संघ का निर्वाह कैसे होगा उन साधुओं को शूद्रजल त्याग करके आहार कौन देगा इत्यादि। किन्तु माताजी ने यह कहकर वहाँ के शिष्ट मंडल को आचार्यश्री के पास अलवर भेजा कि साधुओं के आहार की जिम्मेदारी मेरी है, तुम लोग तो मात्र उन्हें प्रार्थनापूर्वक दिल्ली तक ले आवो। आखिर हुआ भी यही आचार्यश्री संघ सहित दिल्ली पधारे और पूरे शहर में अनगिनत चौके लगे, मानो वहाँ चतुर्थ काल का दृश्य उपस्थित हो गया था।

आर्यिका श्री में संकल्प शक्ति अद्भुत है, वे जिस कार्य को भी हाथ में लेती हैं उसे पूर्ण सफलता के साथ सम्पन्न करके दिखलाती हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री धर्मसागर महाराज के दिल्ली पधारने से पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव में चार चाँद लगे, जिसका अन्तरंग श्रेय पूज्य माताजी को है। उस समय कई सामाजिक एवं शास्त्रीय विवादास्पद विषयों में आचार्यश्री इन्हीं आर्यिका श्री से विचार-विमर्श कर समस्याओं का गम्भीरतापूर्वक समाधान करते थे जो उनकी सिंह वृत्ति का परिचायक बना। आज दिल्ली और सम्पूर्ण पश्चिमी उत्तर प्रदेश का समाज उनकी निस्पृहता, भोलेपन तथा सिंह वृत्ति को स्मरण करता है।

तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर का उद्धार—

हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र के वीरान जंगल ने आर्यिका श्री को अपने संरक्षण हेतु पुकारा और उनकी पदरज पाकर हँसने मुस्कराने लगा। सन् १९७४ में चातुर्मास से पूर्व श्री ज्ञानमती माताजी अपनी १-२ शिष्याओं को लेकर हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र की यात्रा करने दिल्ली से निकली साथ में ब्र० मोतीचन्द जी थे। संयोगवश उन्हें यह तीर्थ पसन्द आया और यहीं पर उन्होंने मोतीचन्द जी द्वारा हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रधानमन्त्री बाबू सुकुमार चन्द, मवाना के सेठ बूलचन्द जी, लखमीचन्द जी आदि महानुभावों के सहयोग से एक छोटी-सी भूमि का चयन कराया और सुमेरु पर्वत की नींव डलवाकर वे पुनः तीव्र गति से दिल्ली पहुँच गईं जहाँ आचार्य संघ के साथ चातुर्मास सम्पन्न किया।

दिल्ली के इस ऐतिहासिक चातुर्मास के पश्चात् उन्होंने अपनी दो शिष्याओं कु० सुशीला, कु० शीला को मगशिर कृ० १० को आचार्य श्री से आर्यिका दीक्षा दिलाई जिनके नाम क्रमशः आर्यिका श्रुतमती जी और आर्यिका शिवमती जी रखे गये। जनवरी सन् १९७५ में आपने अपने आर्यिका संघ सहित हस्तिनापुर की ओर विहार किया पुनः फरवरी में आचार्य श्री भी अपने चतुर्विध संघ सहित ज्ञानमती माता जी की प्रारम्भिक कर्मभूमि के अवलोकनार्थ हस्तिनापुर पधारे। माता जी तथा समस्त संघ प्राचीन बड़े मन्दिर तथा गुरुकुल परिसर में ठहरा।

आचार्य संघ का हस्तिनापुर में लगभग ४ माह का प्रवास रहा, इस मध्य तीर्थ क्षेत्र के जल मन्दिर बाहुबलि मन्दिर एवं जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान होने वाले कल्पवृक्ष भगवान महावीर स्वामी मन्दिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई जिसमें आचार्य श्री ने समस्त प्रतिमाओं को सूरिमन्त्र प्रदान किए तथा द्वितीय महाकाय संघस्थ मुनि श्री वृषभ

सागर महाराज की विधिवत् सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण का हुआ। दोनो महायज्ञों में आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन्हीं की प्रेरणा विशेष से सोलापुर [महाराष्ट्र] के प्रतिष्ठाचार्य पं० श्री वर्धमान जी शास्त्री ने समाज के आमंत्रण पर पधार कर आर्ष परम्परानुसार प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न कराई।

अपनत्व भरी एक वार्ता—

आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज ६ अप्रैल १६७५ को संघ सहित सहारनपुर की ओर जब हस्तिनापुर से विहार करने लगे तो पूज्य श्री ज्ञानमती माता जी को बड़े वात्सल्यपूर्वक प्रवचन सभा में सम्बोधित करते हुये कहा—

"माता जी ! यहां आपके रुके बिना जम्बूद्वीप निर्माण का महान कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। तीर्थ क्षेत्र पर अधिक दिन रुकने में कोई बाधा नहीं है अतः आप निर्विकल्प होकर हस्तिनापुर तीर्थ पर रहें। जम्बूद्वीप रचना शीघ्र पूर्ण होकर आपका मनोरथ सिद्ध होवे, यह मेरा आपको खूब-खूब आशीर्वाद है।"

आचार्य श्री की इस अपनत्व भरी वार्ता ने पूज्य माता जी को संबल प्रदान किया और उनके दृढ़ संकल्प का प्रतीक जम्बूद्वीप रचना आज संसार को अपना साकार रूप दर्शा रही है।

निर्बाध संयम साधना—

ईसवी सन् १६६५ से मस्तिष्क में आई जम्बूद्वीप रचना पृथ्वी पर बनने का संयोग प्राप्त हुआ १० वर्ष पश्चात् १६७५ से। १० वर्षीय मानसिक योजना प्रारम्भ होने के बाद १० वर्ष के अन्तराल में ही पूर्ण हुई तभी सन् १६८५ में उसका प्रतिष्ठापना महोत्सव मनाया गया हालांकि सुमेरु पर्वत का शिलान्यास सन् १६७४ में आषाढ़ सु० ३ को हो गया था अतः यह भी माना जा सकता है कि ६ वर्ष के गर्भकाल के पश्चात् जम्बूद्वीप का जन्म हो गया था। खैर ! इस दीर्घकाल के मध्य कहीं पर माता जी के द्वारा रुकने का आश्वासन न देने के कारण ही अब तक इसका निर्माण न हो सका था। उनके मन में कई बार यह शंका उठ जाती कि इस निर्माण से मेरे संयम में कहीं कोई बाधा न आ जाए अतः उन्होंने अपने शिष्य ब्र० मोतीचन्द जी, ब्र० रवीन्द्र जी, कु० मालती, कु० माधुरी आदि शिष्य-शिष्याओं से स्पष्ट कहा था—

मैं इस रचना निर्माण के लिए किसी से पैसा नहीं मागूंगी और न आहार सम्बन्धी व्यवस्था की कोई चिन्ता करूंगी। यदि तुम लोग मुझसे निर्माण की प्रेरणा चाहते हो तो सारी जिम्मेदारी का भार तुम लोगों पर होगा अन्यथा मुझे जम्बूद्वीप निर्माण में कोई रुचि नहीं है। मेरे संयम में किसी तरह का दोष लगना मुझे स्वीकार नहीं है।"

उनके सभी शिष्यों ने आश्वासन प्रदान कर उन्हें चिन्तामुक्त किया और आज इस बात की प्रसन्नता है कि पूज्य माता जी ने हस्तिनापुर, दिल्ली, खतौली, सरधना आदि स्थानों पर चातुर्मास किए किन्तु उनके संयम में किसी प्रकार की कोई बाधा कभी नहीं आई। न तो उन्होंने कभी जम्बूद्वीप निर्माण के लिये किसी श्रावक से पैसे की याचना की और न ही अपने आहार आदि की व्यवस्था हेतु किसी को कहा। उनके जीवन का एक संकल्प प्रारम्भ से रहा है कि "आहार में कभी संस्था के दान का एक पैसा भी नहीं लगना चाहिये और न ही साधु को अपने आहार के लिये श्रावकों से कहना चाहिये।"

उनके इस नियम को अभी तक हम सभी ने पूर्णरुपेण पालन किया है और भविष्य में भी पूज्य माता जी की तरह निर्दोष संयम पालन की भावनावश इस नियम का पालन करने की उत्कट इच्छा है।

जल तें भिन्न कमल का अनुपम उदाहरण—

महापुरुष अपनी महानता का प्रचार करने हेतु किसी के द्वार पर भीख मांगने नहीं जाते बल्कि महानता स्वयं ही उनके चरण चूम-चूमकर स्वयं को धन्य करती है। यही बात पूज्य श्री ज्ञानमती माता जी के जीवन में चरितार्थ हुई है। उन्होंने गृह त्याग किया तो निज आत्मोद्धार के लिए, दीक्षा धारण की तो अपनी स्त्री पर्याय का छेद करने के लिए, साहित्य सृजन किया तो निज आत्मा की पवित्रता और मन की एकाग्रता के लिये, शिष्यों का निर्माण किया तो अपने सम्यग्दर्शन के संवेग, अनु-कम्पा आदि गुणों की वृद्धि हेतु तथा शिष्य को संसार समुद्र से पार करने हेतु एवं जम्बूद्वीप तथा कमल मन्दिर आदि के निर्माण में प्रेरणा प्रदान किया तो अपने पिण्डस्थ ध्यान को साकार करने हेतु। उन्होंने आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी द्वारा कथित ,'आदहिदं कादव्व" वाला सूत्र अपनाया जिससे आत्महित के साथ-साथ परहित तो स्वयमेव ही हो रहा है।

आज हस्तिनापुर में आने वाले प्रत्येक तीर्थ यात्रियों के मुंह से भक्ति के अतिरेक में यही निकल जाता है कि—

माता जी ! आपने तो जंगल में मंगल कर दिया है, यहां की तो आपने काया ही पलट दी है, यहां आकर असीम शक्ति मिलती है जैसे मानों स्वर्ग में ही आ गये हों।

ज्ञानमती माता जी का उस समय मन्द मुस्कराहट मुद्रा में उत्तर होता है—

"अरे भाई ! हम तो अकिंचन साधु हैं, न हमारे पास पैसा है न कौड़ी, ऐसी स्थिति में तुम अपने [समस्त जैन समाज के] द्वारा किये कार्य को मेरा क्यों कहते हो ? हां मैंने तो मात्र शास्त्रों मे छिपी जम्बूद्वीप रचना का नक्शा बताया है, बाकी मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।"

उनका यह आन्तरिक निस्पृहतापूर्वक दिया गया समाधान भक्तों को और भी अधिक अपनत्व भाव से भर देता है। तब वे समझने लगते हैं कि हां, सचमुच ! यह जम्बूद्वीप तो हम सभी का है, हमने ही तो ज्ञानज्योति के माध्यम से अथवा यहां इसका साक्षात् निर्माण चलता देख कर सैकड़ों, हजारों लाखों रुपये खर्च करके इसे बनाया है और पूज्य माता जी की दैवी प्रेरणा ने हमें सबल प्रदान किया है।

शत प्रतिशत सत्यता भी यही है कि गणिनी आर्यिका श्री जम्बूद्वीप की पावन प्रेरिका हैं निर्मात्री नहीं, क्योंकि उनके जीवन का अर्धभाग तो साहित्य सृजन-लेखन में व्यतीत होता है, चौथाई भाग अपनी नित्य नैमित्तिक साधु क्रियाओं में और चौथाई भाग मजबूरीवश कमजोर शरीर के पालन में व्यतीत होता है, जिसका प्रत्यक्ष लाभ समाज को प्राप्त हो रहा है उनके वृहद् विधान पूजन, अध्यात्म, सिद्धान्त, न्याय, कथा आदि साहित्य के द्वारा।

अभिवन्दनीय गणिनी माता जी के जीवन की यह व्यक्तिगत विशेषता देखी गई है कि हस्तिनापुर में करोड़ों रुपये के इस वृहद् निर्माण के पीछे उन्हें आज तक यह नहीं ज्ञात है कि कहां से ? कैसे ? कितना रुपया ? किस निर्माण के लिए आया और खर्च हुआ है। पंसा छूने की बात तो बहुत दूर है वे अपने समक्ष रुपयों की बात भी नहीं करने देती हैं।

संस्था तथा मूर्ति मंदिर आदि के निर्माण की प्रेरणा देने वाले

साधुओं की प्रायः आज का विद्वद् समाज आलोचना करता है किन्तु उनके लिये पूज्य माता जी का निस्पृह जीवन अवश्य ही अवलोकनीय है। उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान किसी भी समय नजदीकी से देखा जा सकता है। जैसा कि सन् १९७५ में फ्रांस की एन० शान्ता नामक एक महिला जैन साध्वियों पर रिसर्च करते समय पूज्य माता जी के साथ हस्तिनापुर आकर लगभग १५-२० दिन रुकीं और २४ घण्टे उनके समीप रहकर आहार, विहार, धोती पहनना, सामायिक करना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, शयन आदि सब कुछ सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन करती थी। यहां तक कि वह महिला माता जी के आहार के पश्चात् उन्हीं की थाली में परोसा गया बिना नमक, बिना घी, बिना मीठे का नीरस भोजन भी करती और कहती कि अनुभव किये बिना इनकी चर्या का वर्णन थिसिस में कैसे लिखा जा सकता है ?

पूज्य माताजी का यह विशेष पुण्य ही मानना होगा कि ब्र० मोतीचन्द जी (वर्तमान क्षुल्लक मोतीसागर जी) एवं ब्र० रवीन्द्र जी इन्हें पुष्पदन्त और भूतबली के समान ऐसे सुयोग्य शिष्य मिले जिन्होंने माता जी को कभी निर्माण तथा रुपये सम्बन्धी सिर दर्द ही नहीं होने दी। वास्तव में संयम साधना के क्षेत्र में योग्य शिष्यों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान की पूरी कमेटी इस बात से परिचित है कि "ज्ञानमती माताजी सचमुच जल तें भिन्न कमल" का अद्वितीय उदाहरण हैं।

वर्तमान में साधु समाज में व्याप्त कुछ शिथिलाचारों को देखकर लोग सभी साधुओं को एक कोटि में लेकर निन्दा शुरू कर देते हैं किन्तु मैं अपने अनुभव और तर्क के आधार पर गौरव पूर्वक कह सकती हूँ कि आज सर्वथा शिथिलाचारी साधु नहीं है, सूक्ष्मता एवं सामीप्य से देखने पर ७५ प्रतिशत शुद्ध परम्परा मिल सकती है इसमें कोई सन्देह नहीं है। खैर ! पर के द्वारा प्रमाणित अथवा अप्रमाणित मान लिए जाने पर सच्चे साधु की आत्म साधना पर कोई असर नहीं पड़ता, वह तो मुक्ति मार्ग का पथिक होने के नाते अपना आत्म शोधन करता है, यही शोधन कार्य मोक्ष प्राप्ति में उसे सहायक होता है। इस कलियुग में पूज्य ज्ञानमती माताजी को यदि ब्राह्मी माताजी का अवतार कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

पंचकल्याणकों में पावन सानिध्य—

यूँ तो अपने ४० वर्षीय दीक्षित जीवन में आर्यिका श्री ने राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, दिल्ली आदि अनेक स्थानों पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में अपना सानिध्य प्रदान किया है किन्तु जम्बूद्वीप संस्थान को जम्बूद्वीप परिसर की पांच पंचकल्याणकों में उनका मंगल सानिध्य प्राप्त करने का सौभाग्य मिल चुका है।

१. फरवरी सन् १९७५ भगवान महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा (कमल मन्दिर)

२. मई सन् १९७९ सुदर्शन मेरु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

३. मई सन् १९८५ श्री जम्बूद्वीप जिनबिम्ब प्रतिष्ठापना महोत्सव

४. मार्च सन् १९८७ श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक महोत्सव

५. मई सन् १९९० जम्बूद्वीप महोत्सव

इसके अतिरिक्त मार्च सन् १९९२ एवं अप्रैल १९९२ में दो लघु पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाएं भी आपके निर्देशन में जम्बूद्वीप स्थल पर चन्द्र-प्रभ प्रतिमा की हो चुकी हैं।

चातुर्मास कहाँ-कहाँ—

सन् १९५१ में गृह परित्याग के बाद लगभग ४-५ माह तक तो ब्रह्मचारिणी अवस्था में कु० मैना ने बिताया चूँकि उस समय काफी संघर्ष एवं सामाजिक विरोधों के कारण वे दीक्षा न ले सकी थीं। पुनः उचित अवसर पाते ही सन् १९५३ में उन्होंने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की तथा सन् १९५६ में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लगभग पूरे भारत की पदयात्रा करते हुए खूब धर्म प्रभावना की एवं अद्यावधि कर रही हैं। उनके अब तक ४० चातुर्मास निम्न स्थानों पर सम्पन्न हो चुके हैं—

क्रम स्थान	ईसवी सन्
१. टिकैतनगर (उ० प्र०)	१९५३
२. जयपुर (राज०)	१९५४
३. म्हसवड़ (महाराष्ट्र)	१९५५
४. जयपुर खानिया	१९५६
५. जयपुर खानिया	१९५७
६. ब्यावर (राज०)	१९५८

क्रम स्थान	ईसवी सन्
७. अजमेर (राज०)	१६५६
८. सुजानगढ़ (राज०)	१६६०
६. सीकर (राज०)	१६६१
१०. लाडनूं (राज०)	१६६२
११. कलकत्ता (प० बंगाल)	१६६३
१२. हैदराबाद (आंध्र प्रदेश)	१६६४
१३. श्रवण बेलगोल (कर्नाटक)	१६६५
१४. सोलापुर (महाराष्ट्र)	१६६६
१५. सनावद (म० प्र०)	१६६७
१६. प्रतापगढ़ (राज०)	१६६८
१७. जयपुर (राज०)	१६६६
१८. टोंक (राज०)	१६७०
१६. अजमेर (राज०)	१६७१
२०. दिल्ली (पहाड़ी धीरज)	१६७२
२१. दिल्ली (नजफगढ़)	१६७३
२२. दिल्ली (दरियागंज)	१६७४
२३. हस्तिनापुर (बड़े मन्दिर में)	१६७५
२४. खतौली (उ० प्र०)	१६७६
२५. हस्तिनापुर (बड़ा मन्दिर)	१६७७
२६. हस्तिनापुर (बड़ा मन्दिर)	१६७८
२७. दिल्ली (मोरीगेट)	१६७६
२८. दिल्ली (कम्मो जी की धर्मशाला)	१६८०
२६. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८१
३०. दिल्ली (कूचासेठ)	१६८२
३१. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८३
३२. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८४
३३. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८५
३४. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८६
३५. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८७
३६. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८८
३७. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१६८६

क्रम स्थान	ईसवी सन्
३८. हस्तिनापुर (जम्बूद्वीप स्थल)	१९९०
३९ सरधना (मेरठ) उ० प्र०	१९९१
४०. जम्बूद्वीप हस्तिनापुर	१९९२

इनमें से प्रत्येक चातुर्मासों में शिविर, सेमिनार, मंडल विधान आदि अनेक अविस्मरणीय वृहद् कार्य सम्पन्न हुए हैं।

व्यक्तित्व से कृतित्व की ओर—

दीक्षा लेने के बाद शिष्यों का संग्रह, ज्ञान, ध्यान आदि तो प्रायः समस्त साधुओं का लक्ष्य होता है किन्तु ज्ञानमती माताजी ने इन कार्यों के साथ-साथ कुछ ऐसे अविस्मरणीय कार्य किए हैं जिनके द्वारा युग-युग तक उनका नाम इतिहास पटल पर अंकित रहेगा।

१. साहित्य रचना का शुभारम्भ करके कठिन से कठिन और सरल से सरल ग्रन्थों का निर्माण। आपके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या डेढ़ सौ से भी अधिक है जिनमें एक सौ पच्चीस ग्रन्थ लाखों की संख्या में दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर से प्रकाशित भी हो चुके हैं।

२. करणानुयोग साहित्य में वर्णित जम्बूद्वीप रचना को पृथ्वी पर मूर्तरूप देने की प्रेरणा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से निर्माण के क्षेत्र में सदैव अविस्मरणीय रहेगी। जिस प्रकार आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज की प्रेरणा से कुन्थलगिरि और कुम्भोज बाहुबली तीर्थ का उद्धार हुआ है उसी प्रकार आपकी प्रेरणा से हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र भी विकास करके पर्यटन स्थल बन गया है।

३. प्राचीन साहित्य एवं भगवान महावीर के सिद्धान्तों को राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करने का शुभ संकल्प पूरा करके नारी जाति का सम्मान बढ़ाया। जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति रथ का प्रवर्तन ४ जून १९८२ को भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने आपकी प्रेरणा से ही किया था। जिसके माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जम्बूद्वीप रचना को ख्याति प्राप्त हो सकी है।

४. शिक्षा के क्षेत्र में आपने सम्पूर्ण जैन समाज में अपना कीर्तिमान स्थापित किया है आपकी प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान ने

छोटे-बड़े प्रादेशिक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शिविर सेमिनारों के आयोजन भी सम्पन्न किए हैं।

५. भक्ति संगीत के क्षेत्र में तो आपने एक नई मिशाल ही कायम करके दिखाई है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, तीनलोक, सर्वतोभद्र आदि वृहद् पूजन विधानों की रचना करके जन समाज के ऊपर महान उपकार किया है। आज से १५ वर्ष पूर्व तो एक सिद्धचक्र विधान का ही लोग यदा कदा अनुष्ठान कर लिया करते थे किन्तु जबसे पू० ज्ञानमती माताजी ने इन विधानों को रचा है तबसे भारत भर में लगभग प्रतिदिन विधानों का तांता सा लगा रहता है जिसके माध्यम से जैन समाज के हजारों लोग धार्मिक अनुष्ठानों को करते रहते हैं। स्वयं गायन वादन कला के आस्वाद से रहित छन्द शास्त्र का तलस्पर्शी अध्ययन आपकी कवित्व शक्ति का परिचय देता है। एक-एक विधानों में लगभग ७०-८० छन्दों का प्रयोग करके चतुरनुयोग रूप जिनवाणी को ही उनमें निबद्ध कर दिया है। जब किसी नगर या शहर में इन विधानों की संगीतमयी ध्वनि मुखरित होती है तब उस समय अच्छे-अच्छे नास्तिकों के कदम भी उसी ओर बढ़ने लग जाते हैं, न जाने कितने सुप्त हृदय जागृत हो जाते हैं।

माता जी की तपोभूमि हस्तिनापुर—

हस्तिनापुर की प्राचीनता आज से कोड़ाकोड़ी वर्षों पूर्व तृतीय काल में इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर ने तीर्थंकर आदि त्रेसठ शलाका महापुरुषों के लिए अयोध्या, सम्मेदशिखर, कुण्डलपुर, पावापुर, उज्जयिनी, हस्तिनापुर आदि नगरियों की रचना की थी। अनादिकालीन परम्परा के अनुसार अयोध्या हमेशा ही तीर्थंकरों की जन्मभूमि रही है और सम्मेदशिखर निर्वाण भूमि रही है। किन्तु वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से कुछ तीर्थंकरों ने अन्यत्र जन्म लिया और मोक्ष भी अन्य क्षेत्रों से प्राप्त किया। यही कारण है कि हस्तिनापुर की पुण्यभूमि को भी तीर्थंकर की जननी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ इन तीर्थंकरत्रय ने जन्म लेकर इसी भूमि पर एक छत्र राज्य किया ये तीनों ही चक्रवर्ती और कामदेव पद के धारी हुए। हस्तिनापुर इनकी राजधानी थी। चक्रवर्ती का वैभव भोगकर पुनः उसका त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर

घाति अघाति कर्मों का नाश करके सम्मेदशिखर पर्वत से निर्वाण प्राप्त किया।

इससे भी पूर्व प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ भी वर्षोपवास के अनंतर हस्तिनापुर नगरी में चर्या के लिए आए थे, राजा श्रेयांस और सोमप्रभ ने अपने पूर्वभव के जाति स्मरण हो जाने से उन्हें विधिवत् नवधाभिक्तपूर्वक पड़गाहन कर इक्षुरस का आहार दिया आज भी वह पवित्र दिवस अक्षय-तृतीया के नाम से जगप्रसिद्ध है। हस्तिनापुर और उसके चारों ओर आज भी इक्षु-गन्ने की सघन खेती देखी जाती है। यहाँ पर आने वाले हर यात्री का मुँह अनायास ही मीठा हो जाता है।

इस प्रकार अयोध्या के समान ही हस्तिनापुर की भी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। हां! काल प्रभाव से ये नगरियां अब छोटी हो गई हैं। इनके आसपास का बहुभाग पर्वत नदी तथा अन्य प्रदेशों में विभक्त हो गया है। यहीं पर अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों पर राजा बलि ने उपसर्ग किया था विष्णुकुमार मुनि ने उपसर्ग का निवारण कर रक्षा बन्धन पर्व का शुभारंभ किया। जिसे आज भी लोग श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन परस्पर में रक्षासूत्र बांधकर मनाते हैं, अभिनंदन आदि पाँच सौ मुनियों को राजा की आज्ञा से यहीं पर घानी में पेला गया था, सेमल की रूई गुरुदत्त मुनि के शरीर में लपेट कर भयंकर अग्नि का उपसर्ग हुआ। तथा इसी धरा पर कौरव तथा पांडवों का महाभारत युद्ध हुआ। इस प्रकार अनेकों इतिहास यहां से जुड़े हुये होने से यह क्षेत्र ऐतिहासिक तीर्थ क्षेत्र माना जाता है।

होनहार की बात होती है कोड़ाकोड़ी वर्षों पूर्व जिस सुदर्शन मेरु पर्वत को हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने अपने स्वप्न में देखा था उसे साकार करने का श्रेय पू० आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी को मिला।

जम्बूद्वीप की प्रारंभिक उपज कहां से ?

ईसवी सन् १९६५ में आर्यिका श्री ज्ञानमती माता जी ने अपने संघ सहित कर्नाटक के श्रवण बेलगोला तीर्थ क्षेत्र पर भ० बाहुबली के चरण सानिध्य में चातुर्मास स्थापना किया। उस समय माता जी के संघ में आ० पद्मावती जी, आ० जिनमती माता जी, आर्यिका आदिमती जी, क्षु० श्रेयांसमती एवं क्षु० अभयमती जी थीं। आ० आदिमती जी व क्षु० अभयमती जी की अस्वस्थता के कारण माता जी को वहां पर लगभग

एक वर्ष रुकना पड़ा। जिसके मध्य कई बार विंध्यगिरि पर्वत पर भ० बाहुबलि के चरण सामीप्य में माता जी को ध्यान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ध्यान की धारा निरन्तर बढ़ती गई। एक बार १५ दिन तक मौनपूर्वक लगातार पहाड़ पर रहकर ध्यान किया। मात्र आहार के समय नीचे उतरना आहार के अनंतर पुनः ऊपर जाकर रात्रि वहीं व्यतीत करती थीं। आर्यिका पद्मावती जो हमेशा माता जी के साथ ही रहती थीं। इसी मध्य एक दिन माता जी ने भगवान बाहुबलि का ध्यान करते-करते उसी ध्यान की धारा में तेरह द्वीप के चार सौ अट्ठावन जिन चैत्यालयों की वंदना, वहां को अकृत्रिम छटा, वन खण्ड, स्वयं सिद्ध प्रतिमायें सब कुछ यथावत् मस्तिष्क में दृष्टिगत होने लगा। विशेष आनन्दानुभव के साथ ध्यान सन्तति समाप्त हुई। माता जी के हर्ष का पारावार नहीं था जब प्रातःकाल आहार के समय पहाड़ से नीचे आई तो करणानुयोग के त्रिलोकसार ग्रन्थ को उठाकर उसमें ज्यों की त्यों रचना का वर्णन पढ़कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। १५ दिन बाद मौन की अवधि समाप्त होने पर उन्होंने अपनी शिष्या आर्यिकाओं को भी सारी घटना बताई। माता जी की शिष्या आर्यिका जिनमती जी ने कहा कि यह रचना पृथ्वी पर अवश्य साकार होनी चाहिये। माता जी अपने प्रवचनों में भी जब अकृत्रिम चैत्यालयों का वैभव, उनकी प्राकृतिक छटा का वर्णन करतीं उस समय सभी श्रोता एक क्षण को वहीं पहुँचकर स्वयं सिद्ध प्रतिमाओं के ध्यान में लीन हो जाते। जैसा कि यह सूक्ति प्रसिद्ध ही है कि "वक्त्रं वक्ति हि मानसम्" ठीक इसी प्रकार माता जी के अन्तःकरण से निकले हुए शब्द श्रोताओं को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। आज भी उनकी यही अन्तरंग भावना रहती है कि "कब उन अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना साक्षात् करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा।" भगवान उनकी इस भावना को अवश्य पूर्ण करेगा।

कुछ दिनों के बाद श्रवण बेलगोला से विहार करके आर्यिका संघ सोलापुर [महाराष्ट्र] आया। यहां पर एक श्राविकाश्रम है जिसकी संस्थापिका पद्मश्री पं० सुमतिबाई शहा कर्मठ महिला हैं साथ में बाल ब्र० विदुषी विद्युल्लता शहा भी माता जी की अनन्य भक्तों में से हैं। इनकी मां आ० चन्द्रमती जी माता जी के साथ ही आचार्य वीरसागर के संघ में रहती थीं और ज्ञानमती माता जी से कुछ न कुछ अध्ययन भी करती थीं। यही कारण था कि उनकी माता जी के प्रति विशेष भक्ति

थी अतः इन लोगों के आग्रह से माता जी ने सोलापुर के महिलाश्रम में ही चातुर्मास स्थापन किया। उसी समय आ० श्री विमलसागर महाराज का संघ सहित चातुर्मास सोलापुर में ही शहर में हुआ। दोनों संघों का संगम वहां की धर्मप्रभावना में विशेष सहकारी बना। ज्ञानमती माता जी के सानिध्य में शिक्षण शिविर का आयोजन हुआ जिसमें प्रौढ़ स्त्री पुरुषों ने सक्रिय रूप से भाग लेकर ज्ञानार्जन किया। माताजी प्रतिदिन विभिन्न विषयों के साथ-साथ जैन भूगोल पर अच्छा प्रकाश डालतीं जिससे ब्र० सुमतिबाई के हृदय में भी इस रचना को पृथ्वी पर बनाने की लालसा जागृत हुई। उन्होंने सोलापुर में इस रचना हेतु कई स्थल चयन किए और माता जी से कुछ दिन यहीं रहकर मार्ग दर्शन देने के लिए निवेदन किया। उन्होंने बहुत आग्रह किया कि माता जी हम आपकी चर्या में किसी प्रकार का दोष नहीं लगने देंगे हमें मात्र आपके द्वारा दिशा-निर्देश चाहिए क्योंकि यह रचना आज तक कहीं भी बनी नहीं है, किसी इंजी-नियर या आर्कीटेक्ट के गम्य भी यह विषय नहीं है। नंदीश्वर द्वीप की रचना, समवशरण की रचना तो कई जगह निर्मित हो चुकी हैं अतः उसकी नकल करने में हमें कोई परेशानी नहीं होगी किन्तु यह रचना मात्र आपके मस्तिष्क में है आप ही इसका सही मार्गदर्शन दे सकती हैं। किन्तु माता जी के वहां नहीं रुकने के कारण वहां का कार्य सम्भव न हो सका। सोलापुर में ब्र० सुमतिबाई और कु० विद्युल्लता जी ने जिस तन्मयता से पू० माता जी की व संघ की वैयावृत्ति की उसका उदाहरण माता जी के प्रवचन में कई बार सुनने को मिलता है "विद्वत्ता के साथ-साथ साधु सेवा का गुण वास्तव में सोने में सुगन्धि का कार्य करती है।" इस प्रकार से सोलापुर का चातुर्मास माता जी के जीवन का अविस्मरणीय पृष्ठ है।

माता जी की हार्दिक इच्छा तो हमेशा रही कि मेरे मस्तिष्क की रचना कहीं न कहीं पृथ्वी पर अवश्य साकार हो जाए किन्तु वे इसमें माध्यम नहीं बनना चाहती थीं। उनकी इच्छा थी कि कोई इसे स्वयं अपनी जिम्मेदारी पर करवाए। यही कारण रहा कि कहीं इसका योग नहीं बना। वैसे तो ऐसे-ऐसे महान कार्य किसी साधु सन्तों के आश्रय के बिना असंभव ही होते हैं। इस शताब्दी के पुराने इतिहास को देखने से भी यही ज्ञात होता है कि धार्मिक साहित्य तथा तीर्थों का उद्धार साधुओं के द्वारा ही हुआ है। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य सम्राट श्री शांतिसागर

महाराज की प्रेरणा से प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थ धवला ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण हुआ जो फलटण में आज भी विराजमान हैं। युगोंयुगों तक यही साहित्यिक धरोहर जैन धर्म की प्राचीनता को दर्शाएगा। इसी प्रकार से कुंथलगिरि में देशभूषण और कुलभूषण मुनिराजों की प्रतिमाओं की स्थापना भी आ० श्री की प्रेरणा से ही हुई। वह तीर्थ आ० श्री को अत्यंत प्रिय था इसीलिए उन्होंने वहीं पर सल्लेखनापूर्वक अपने अंतिम शरीर का त्याग किया। कुम्भोज बाहुबली जो महाराष्ट्र का जीवन्त तीर्थ है उसका उत्थान भी आचार्य श्री की प्रेरणा से ही हुआ। इसका सुन्दर ज्यों की त्यों वर्णन डा० श्री सुभाषचन्द अक्कोले ने "आ० शांतिसागर जन्मशताब्दी महोत्सव स्मृति ग्रन्थ" में किया है। उन्होंने किस प्रकार से मुनि समन्तभद्र जो को कुम्भोज में बाहुबली की प्रतिमा स्थापित करने की प्रेरणा और आशीर्वाद प्रदान किया। देखिये—

"तुमची इच्छा येथे हजारों विद्यार्थ्यांनी राहावे शिकावे ...... हा तुम्हा सर्वांना आशीर्वाद आहे।"

इसका हिन्दी अर्थ यह है—

"आपकी आन्तरिक इच्छा यह है कि यहां पर हजारों विद्यार्थी धर्माध्ययन करते रहें इसका मुझे परिचय यह है। यह कल्पवृक्ष खड़ा करके जा रहा हूँ। भगवान का दिव्य अधिष्ठान सब काम पूरा कराने में समर्थ है। यथासम्भव बड़े पाषाण को प्राप्त कर इस कार्य को पूरा कर लीजिए।"

मुनिश्री समन्तभद्र जी की ओर दृष्टि कर संकेत किया—"आपकी प्रकृति [स्वभाव] को बराबर जानता हूँ। यह तीर्थ भूमि है। मुनियों को विहार करते रहना चाहिए इस प्रकार सर्वमान्य नियम है फिर भी विहार करते हुए जिस प्रयोजन की पूर्ति करनी है उसे एक स्थान में यहीं पर रहकर कर लो। यह तीर्थक्षेत्र है एक जगह पर रहने के लिए कोई बाधा नहीं है। जिस प्रकार से हो सके कार्य शीघ्र पूरा करने का प्रयत्न करना। कार्य अवश्य ही पूरा होगा, सुनिश्चित पूरा होगा। आप सबको हमारा शुभाशीर्वाद है।"

आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज ने अयोध्या में १००८ भ० आदिनाथ की विशाल प्रतिमा स्थापित करवाई, जयपुर खानिया का चूलगिरि पर्वत उन्हीं की देन है। उन्होंने अपनी गृहस्थावस्था को जन्म-

भूमि कोथली में कितना विशाल कार्य करवाया। गुरुओं की प्रेरणा व आशीर्वाद भक्तों के कार्यकलापों में संबल प्रदान करता है। आचार्य श्री विमलसागर महाराज ने सम्मेदशिखर में समवशरण की रचना बनवाई, सोनागिरि में उनकी प्रेरणा से नंग अनंग की मूर्ति तथा गुरुकुल की स्थापना हुई इसी प्रकार जगह-जगह आ० श्री की प्रेरणा से बहुत से धार्मिक कार्य होते रहते हैं। आ० श्री विद्यासागर महाराज की प्रेरणा से सागर एवं जबलपुर [म० प्र०] में ब्राह्मी विद्या आश्रम की स्थापना हुई जिसमें सैकड़ों अल्पवयस्क बालिकाएँ ज्ञानार्जन करके आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। इसी प्रकार से धर्मगुरुओं की प्रेरणा से हमेशा समाज एवं धर्म की उन्नति हुई है। निन्दा और प्रशंसा की ओर इन साधुओं का लक्ष्य न होकर आत्म और पर के कल्याण की ओर ही होता है। निन्दा करने वाले मात्र अपने कर्म का बन्ध कर लेते हैं जो कि उन्हें भव भव में स्वयं को भोगना पड़ता है। एक भव की अज्ञानता अनेक भव परिवर्तनों का कारण बनती है। तभी तो आचार्यों ने कहा है—

भुक्तिमात्रप्रदाने तु का परीक्षा तपस्विनाम्।
ते सन्तः सन्त्वसन्तो वा गृही दानेन शुद्धयति ।।

अर्थात् गृहस्थ को साधुओं की निंदा करने से क्या प्रयोजन ? वह तो आहारदानादि अपनी क्रियाओं को करके शुभ भावों का बन्ध कर ही लेता है साधु में यदि साधुता नहीं है तो उसका फल उन्हें स्वयं भोगना पड़ेगा श्रावक तो उसके फल में हकदार हो नहीं सकता।

वर्तमान में मनुष्यों की स्थिति यह है कि व्यापारिक उलझनों में उलझ कर रिश्वत में हजारों, लाखों रुपया देकर भी चैन की नींद नहीं सो सकते। जबकि सुबह से शाम तक एड़ी से चोटी तक परिश्रम करके खून पसीना बहा करके केवल पारिवारिक संतुष्टियों के लिए सब कुछ किया जाता है। यदि इसकी जगह संतोषपूर्वक न्याय से थोड़ा धन कमाया जाए, उसी में से थोड़ा धर्मकार्यों में दान किया जाए, साधुओं की प्रेरणा से किसी धर्मतीर्थ का जीर्णोद्धार करा दिया जाए तो वह अधिक श्रेयस्कर है। लेकिन इसका मूल्यांकन कोई विरले पुरुष ही कर सकते हैं।

पूज्य ज्ञानमती माताजी ने जब तक इस रचना कार्य में स्वयं को नहीं डाला तब तक वह प्रादुर्भूत न हो सकी। सोलापुर से विहार करके माताजी भ्रमण करते-करते मध्यप्रदेश इन्दौर में अपने संघ सहित आ गईं। इन्दौर से लगभग ६० कि०मी० दूर सनावद (म० प्र०) की भाक्तिक

जैन समाज के आग्रह से माताजी के संघ का सन् १९६७ का चातुर्मास सनावद में हो गया। यहाँ पर भी विशिष्ट व्यक्तियों ने जब माताजी के मस्तिष्क की रचना को सुना और समझा तो रुचि पूर्वक वहीं पर इसे बनवाने का विचार करने लगे। पास में ही सनावद से ८-१० कि० मी० दूर सिद्धवरकूट सिद्ध क्षेत्र पर स्थान भी चयन किया गया। चातुर्मास समाप्ति के अनंतर सनावद वालों की प्रेरणा से माताजी ने सिद्धवरकूट यात्रा के लिए विहार किया। साथ में श्री रत्नचन्द जी कमलाबाई, ब्र० मोतीचंद जी (क्षु० मोतीसागर) श्रीचद जी, त्रिलोकचंद जी, यशवन्त कुमार (वर्तमान में मुनि वर्धमानसागर) आदि बहुत से लोग थे। सिद्धवरकूट नर्मदा नदी के तट पर बसा होने के कारण विशेष आकर्षण का केन्द्र है। नाव से ५-६ मील नदी के रास्ते को तय करके यात्रीगण उस क्षेत्र पर पहुँचते हैं। यात्रा संघ में गए हुए मोतीचन्द आदि सभी लोगों ने इस दृष्टि से उस स्थान को रचना निर्माण के लिए चुना जहाँ नर्मदा का जल सुविधापूर्वक प्राप्त करके अपने निर्माण में नदो समुद्रों के लिए तथा फौव्वारों की सुन्दरता के लिए जल पर्याप्त अवस्था में प्राप्त कर सकें बहुत लम्बी चोड़ी जगह का माप लिया गया। रमणीक स्थान होने के कारण चउमुखो दृष्टियों का केन्द्र बनता किन्तु वहाँ का भी योग नहीं था। अचानक आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के संघ से सूचना आ गई कि ज्ञानमती माताजी से कहो कि यह रचना महावीर जी तीर्थक्षेत्र पर बनेगा अतः वे शीघ्र ही आर्यिका संघ सहित यहाँ आने का प्रयास करें। माताजी के हृदय में प्रारंभ से हो अटूट गुरु भक्ति थी गुरु भाई आचार्य श्री का सन्देश मिलते ही जल्दी हो संघ में जा पहुँची। तब तक तो माताजी के मन में १३ द्वीप की रचना का ही प्लान था।

होनहार बहुत बलवान होती है आचार्य संघ महावीर जी पहुँचा ही था कि वहाँ पर आकस्मिक आ० श्री शिवसागर महाराज बीमार पड़ गए और देखते ही देखते फाल्गुनी अमावस्या को उनकी समाधि हो गई। अब उस संघ का नेतृत्व आ० श्री धर्मसागर जी महाराज के हाथों में आ गया। आ० श्री की समाधि से संघ का वातावरण शोकाकुल सा रहा। माताजी का उत्साह भी ठण्डा पड़ चुका था अतः आगे कोई बात नहीं चलाई गई। माताजी भी संघ के साथ में विहार व धर्मप्रभावना करतीं रहीं। महावीर जी के बाद सन् १९६९ में जब संघ का चातुर्मास जयपुर (राज०) में था माताजी ने वहाँ पर ज्योतिर्लोक विषय पर शिविर लगाया उस समय

जनता को करणानुयोग के विषय में नया दिशाबोध मिला। संघस्थ ब्र० मोतीचन्द जी ने परिश्रमपूर्वक कुछ विशेष नोट्स भी तैयार किए। कुछ दिनों बाद उन्हीं नोट्स के आधार पर एक पुस्तक "जैन ज्योतिर्लोक" लिखी जो आज भी त्रिलोक शोध संस्थान में उपलब्ध है। माताजी को तो जैसे करणानुयोग का सारा विषय हृदयंगम ही हो चुका था यदि स्वप्न में भी कोई तत्संबंधी प्रश्न कर देवे तो उसका उत्तर आगम आधारपूर्वक प्रस्तुत रहता था। अवश्य ही इन्हें कोई न कोई पूर्व भव के प्रबल संस्कार ही कहना पड़ेगा।

सन् १९७१ का चातुर्मास आ० संघ के साथ ही अजमेर (राज०) में हुआ वहाँ के सर सेठ भागचन्द जी सोनी और उनकी धर्मपत्नी ज्ञान से प्रभावित होने के कारण पू० माताजी के पास अधिक समय निकाल कर स्वाध्याय आदि का लाभ लेते। चातुर्मास सोनी जी की नशिया में ही हुआ था अतः वहीं पर प्रवचन भी होते थे। एक दिन सेठजी के सामने माताजी की बात हुई उन्होंने बड़ी रुचि पूर्वक माताजी को उसी नशिया में ऊपर कमरे में बनी हुई रचना को खोल कर दिखया उसमें भी कुछ-कुछ वही झलक थी बीच में पाँच मेरु भी बनाए गए थे। आज भी उधर के आसपास के लोग उसे देखने आते हैं। माताजी की मनोभावना थी कि कहीं खुले स्थान पर पृथ्वी पर यह रचना बने। लेकिन तेरहद्वीप की रचना उस समय के लिए करोड़ों की लागत का कार्य था अतः प्रश्नवाचक चिह्न बनकर खड़ा होता कि यह राशि कहाँ से आयेगी कौन इसकी जिम्मेदारी लेगा ? अन्ततोगत्वा सोच विचार करके यह निष्कर्ष निकाला गया कि केवल जम्बूद्वीप की योजना को साकार करना चाहिए। अजमेर चातुर्मास समाप्त होने पर संघ का विहार हुआ। यहाँ कुछ दूर हो "पीसांगन" नाम के गाँव से पू० आचार्य श्री से आज्ञा लेकर माताजी ने ब्यावर की ओर बिहार कर दिया वहाँ पर पंचायती नशिया में एक कमरे में सीमेन्ट का मॉडल वहाँ की जैन समाज ने बनवाया जिसमें शास्त्रोक्त विधि से जिनमंदिर एवं देवभवन आदि बने हैं, और बिजली तथा फव्वारों से सुन्दर लवण समुद्र तथा तथा नदियों के दृश्य दिखाए हैं। ब्यावर में एक बार माताजी के पास दिल्ली से श्री परसादो लाल जी पाटनी आदि कई सज्जन दर्शनार्थ पधारे। उन्होंने (वहां पर बनती हुई रचना को देखकर) माताजी से निवेदन किया कि दिल्ली में २५०० वां निर्वाण महोत्सव के अवसर पर आपको अपने संघ सहित अवश्य पधारना चाहिए

वहां पर विशाल पैमाने पर इस रचना का निर्माण कार्य अधिक लोकोपयोगी सिद्ध होगा। दिल्ली वासियों की अधिक प्रेरणा से पू० माताजी ने दिल्ली की ओर बिहार किया उस समय माताजी के साथ मुनि श्री संभवसागर जी, मुनि श्री वर्धमानसागर जी, आर्यिका आदिमती जी, आर्यिका श्रेष्ठमती जी एवं आर्यिका रत्नमती माताजी थीं। सन् १९७२ का चातुर्मास पूरे संघ का दिल्ली पहाड़ीधीरज को नन्हेमल घमण्डो लाल जैन धर्मशाला में हुआ। सन् १९७३ का दिल्ली नजफगढ़ में हुआ।

"जो होता है सो अच्छा ही होता है" यही कहावत चरितार्थ हुई। पू० माताजी प्रारम्भ से ही अटल पुरुषार्थी रही हैं सन् १९७४ में उन्होंने हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र की ओर विहार किया।

पूज्य माताजी के पास फिलहाल उस समय ब्र० मोतीचन्द के सिवाय कोई पुरुषार्थी शिष्य नहीं था। रवीन्द्र जी भी उस समय घर गए हुए थे। अनिच्छा होते हुए भी माताजी की इच्छा व आज्ञानुसार मोतीचन्द जी हस्तिनापुर के आस-पास की भूमियों को देखने लगे। अब उनके साथ मेरठ के बाबू सुकुमार चन्द जी व मवाना के सेठ बूलचन्द जी, लखमी चन्द जी आदि लोगों का सहयोग मिलने लगा। पूज्य माताजी के आशीर्वाद और लगन का फल रहा हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर ही मन्दिर से आधा फर्लांग दूर छोटी-सी भूमि क्रय की गयी। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि सन् १९७२ में दिल्ली पहाड़ी धीरज पर डा० कैलाशचन्द, लाला श्यामलाल, वै० शान्तिप्रसाद, श्री कैलाशचन्द जी करोलबाग आदि महानुभावों के सहयोग से एक संस्था की स्थापना की गई थी जिसका नाम "दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान" रखा गया। उसकी नॉमिनेट कमेटी का गठन भी किया गया। उसी संस्थान के नाम से हस्तिनापुर की प्रारम्भिक भूमि क्रय की गई। उस भूमि के केन्द्र बिन्दु से बीचोंबीच में सुदर्शन मेरु पर्वत का शिलान्यास करवा कर माताजी निर्वाणोत्सव के निमित्त से पुनः दिल्ली आ गई। तब तक आ० धर्मसागर महाराज का संघ भी दिल्ली पदार्पण कर चुका था। आचार्य संघ के साथ ही माताजी ने भी दिल्ली लाल मन्दिर में चातुर्मास स्थापना की। विभिन्न आचार्य और मुनियों के सानिध्य में राजधानी में चारों सम्प्रदायों की ओर से भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव राजनेताओं के सौजन्य से आशातीत सफलताओं के साथ सम्पन्न हुआ। पू० एलाचार्य श्री विद्यानन्दि महाराज कई विषयों में माताजी से परामर्श करते-करते अक्सर कहते कि

माताजी ! हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर इस रचना की महत्ता अत्यधिक बढ़ेगी। सौभाग्य से आ० श्री धर्मसागर जी का संघ और एलाचार्य विद्यानन्दि जी महाराज भी हस्तिनापुर पधारे और बड़ी रुचिपूर्वक रचना स्थल पर भगवान महावीर प्रतिमा की स्थापना होते समय आ० श्री ने प्रतिमा के नीचे अचलयन्त्र स्थापित किया। वह छोटा-सा महावीर मन्दिर जम्बूद्वीप रचना की चऊँमुखी उन्नति में अनुपम प्रभावशाली सिद्ध हुआ। आ० श्री धर्मसागर जी का संघ हस्तिनापुर में लगभग ४ महीने रहा। सरधना के निवासियों ने उस समय बड़ी तत्परता से वैयावृत्ति और चौके लगाकर आहार दान का लाभ लिया। आचार्यश्री जब हस्तिनापुर से मंगल विहार करने लगे उस समय माताजी को आशीर्वाद प्रदान करके जम्बूद्वीप रचना के निमित्त हस्तिनापुर में ही रहने की प्रेरणा दी। अब माताजी के संघ में आर्यिका श्री रत्नमती माताजी और आर्यिका शिवमती जी रहीं इन दोनों आर्यिकाओं और ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणियों सहित माताजी तीर्थक्षेत्र के बड़े मन्दिर में रहती थीं। ब्र० मोतीचन्द जी, ब्र० रवीन्द्र कुमार जी जो इस रचना के कर्ता धर्ता और नींव हैं वे लोग मन्दिर बाउण्ड्री के बाहर कमरे में रहते और माताजी तथा संघस्थ हम सभी ब्रह्मचारिणियां मन्दिर के कमरों में रहते थे। मन्दिर से जम्बूद्वीप स्थल तक जाने में घने जंगल के कारण भय प्रतीत होता था। हम लोग भी कभी अकेले वहाँ तक आने की हिम्मत नहीं कर पाते थे। माताजी के साथ लगभग प्रतिदिन या एक-दो दिन बाद आते रहते थे। जम्बूद्वीप स्थल पर मात्र एक चौकीदार का परिवार रहता था। आफिस के मैनेजर के रहने के लिए स्थल पर अभी तक कोई निर्माण नहीं हो सकने के कारण वे भी बड़े मन्दिर में ही बाहर के एक कमरे में रहते थे। बाबू सुकुमार चन्द जी माताजी तथा हम लोगों का विशेष ध्यान रखते और आवश्यकतानुसार सारी सुविधाएँ भी प्रदान करते। उनकी धर्मपत्नी प्रतिमाधारी व्रतिक महिमा हैं वे जब भी हस्तिनापुर आतीं हमेशा आहारदान तथा वैयावृत्ति के भावों से माताजी की सेवा करतीं। कभी स्वयं अपना चौका लगातीं और कभी हमारे चौके में आकर आहार देतीं।

पूज्य माताजी के निमित्त से अब हस्तिनापुर में राजस्थान, कर्नाटक, गुजरात, आसाम और उत्तर-प्रदेश सभी ओर से लोग आने लगे। पिछड़ा और विस्मृत क्षेत्र अब प्रकाश में आने लगा। तीर्थक्षेत्र कमेटी के सभी सदस्य और सुकुमारचन्द जी बड़े प्रसन्न होते और कहते कि माताजी

आपके निमित्त से हमारा हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र अवश्य ही शीघ्र टूरिस्ट सैण्टर बन जाएगा। इस क्षेत्र के मन्दिर में दान की रकम तो हमारी बढ़ती जा रही है आपका जम्बूद्वीप बन जाने पर तो विदेशी पर्यटकों का भी यहाँ पर आना जाना रहेगा और तब यह जैन भूगोल के अनुसंधान का विशेष केन्द्र बन जाएगा। बाहर से आने वाले हर दर्शनार्थी के मुँह से भी यही सुना जाता कि हम लोग मेरठ सरधना तक तो हमेशा व्यापारिक निमित्त से आते रहते थे लेकिन हस्तिनापुर के दर्शन कभी नहीं किए थे। ज्ञानमती माताजी के दर्शन से हमें दोहरा लाभ प्राप्त हो रहा है यह खुशी की बात है। माताजी ने कभी भी किसी से जम्बूद्वीप रचना तथा अन्य किसी निर्माण आदि के लिए पैसे की बात नहीं कहीं। चूंकि माताजी भी बड़े मन्दिर में ही रहती थीं अत: हर यात्री वहीं पर दान की रकम देते थे और अपनी इच्छानुसार जम्बूद्वीप में भी दान देते। जम्बूद्वीप स्थल पर सुमेरु पर्वत का निर्माण कार्य यथाशक्ति चल रहा था। यहाँ पर एक ऑफिस की अत्यन्त आवश्यकता महसूस हो रही थी जिससे निर्माण की गतिविधि सुचारू रूप से चल सके।

सन् १९७५ में ऑफिस की नींव रखी गई कुछ दिनों में वह तैयार हो गया। तब से लेकर आज तक उसी कार्यालय की गतिविधियों से छोटे बड़े समस्त आयोजन सफल हो रहे हैं। संस्थान के मैनेजर अब कार्यालय में बैठते और दोनों संघस्थ ब्रह्मचारी (मोतीचन्द और रवीन्द्र कुमार) सुबह से शाम तक स्थल पर निर्माण आदि की कार्यवाही देखते और रात को सोने के लिए बड़े मन्दिर में ही जाते। मैं प्रात:काल पू० माताजी के साथ ही बड़े मन्दिर से पूजन सामग्री और बाल्टी में शुद्ध जल तथा मन्दिर की चाभी लेकर जम्बूद्वीप स्थल पर आती। क्योंकि हम सभी लोग भगवान् महावीर के मन्दिर में ही अभिषेक पूजन करते थे। माताजी के शुरू से ही धार्मिक अनुष्ठानों विधि विधानों में अधिक रुचि रही है उसी के अनुसार हम लोगों से भी सिद्धचक्र, गणधरवलय, शान्तिविधान, ऋषिमण्डल आदि अनेक विधान करवाए।

माताजी स्वयं भी लाखों मन्त्रों का जाप्य किया करती थीं मैं समझती हूँ कि उनकी तपस्या एवं मन्त्रों का ही प्रभाव है कि त्रिलोक शोध संस्थान के प्रत्येक कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुए हैं।

जम्बूद्वीप स्थल पर सुमेरु पर्वत का कार्य द्रुत गति से चल रहा था दिल्ली के इंजीनियर श्री के० सी० जैन, के० पी० जैन, एस० एस०

गोयल तथा रुड़की के प्रसिद्ध इंजीनियर श्री डा० ओ० पी० जैन की विशेष देख-रेख में ८४ फुट ऊँचे सुमेरु पर्वत का निर्माण हुआ। जिसमें नीचे से ऊपर तक १३६ सीढ़ियाँ बनाई गई। गुलाबी संगमरमर पत्थर से जड़ा हुआ सुमेरु पर्वत भक्तों के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र है। इसमें १६ जिनप्रतिमाएं हैं जो अकृत्रिम बिम्बों के समान ही वीतरागी छवि से युक्त हैं। यह एक अनुभव गम्य विषय है कि जो भी दर्शक इन प्रतिमाओं के समक्ष नजदीकी से जाकर दर्शन कर आत्मावलोकन करते हैं उन्हें अभूतपूर्व शान्ति प्राप्त होती है। ज्ञानमती माताजी इस पर्वत के ऊपर पांडुकवन में जाकर बहुधा घण्टों ध्यान किया करती थीं। आज भी यदा-कदा करती हैं। प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों समय यह पर्वत रंग बदलता हुआ सा प्रतीत होता है। पूर्व दिशा के उगते सूर्य की लालिमा जब सुमेरु पर्वत पर पड़ती है तब उसकी आभा केशरिया रंग से युक्त हो जाती है सामने भद्रसाल वन की प्रतिमा का दर्शन करते हुए पीछे सूर्य का बिम्ब चमकते भामण्डल जैसा प्रतीत होता है। मध्याह्न ११ बजे के अनन्तर तप्तायमान सूर्य की किरणें उस पूरे पर्वत को स्वर्णिम रूप में परिवर्तित कर देती हैं पुनः सन्ध्याकाल में विशेष रूप से शुक्ल पक्ष की चाँदनी रात्रि में धवल दुग्ध के समान चन्द्रमा की शीतल किरणें अभिषेक करती हुई प्रतीत होती हैं यह कोई अतिशयोक्ति नहीं बल्कि सुमेरु पर्वत में विराजमान स्वयंसिद्ध प्रतिमाओं का अतिशय ही इसे चमत्कृत कर रहा है।

सूर्योदय और सूर्यास्त के मनोरम दृश्य—

सुमेरु पर्वत में ऊपर पांडुकवन में चढ़ने पर प्रातः सूर्य के उदय का और शाम को अस्ताचल की ओर जाते हुए सूर्य बिम्ब का दर्शन बड़ा सुन्दर लगता है। अन्य पर्वतीय क्षेत्रों की भांति इसका भी विशेष महत्त्व प्रदर्शन किया जा सकता था किन्तु हस्तिनापुर में इस विषय का प्रचार इसलिए नहीं किया गया कि ऊपर चढ़ते हुए स्थान अत्यन्त संकुचित रह गया है जहाँ अधिक लोग एक साथ न चढ़ सकते हैं और न वहाँ बैठने की ही पर्याप्त जगह है वर्ना यह जम्बूद्वीप माउण्ट आबू जैसी ख्याति को प्राप्त हो सकता था। ख्याति तो यूं भी बहुत है इस रम्य क्षेत्र में लोग जम्बूद्वीप के दर्शन करने प्रातः ५ बजे से ही आने प्रारम्भ हो जाते हैं मध्याह्न की कड़कड़ाती धूप में भी सतत सुमेरु पर्वत पर यात्रियों का आवागमन चला करता है रात्रि होते-होते भी यात्रियों के दिल में दर्शन

की एवं सुमेरु पर चढ़ने की जिज्ञासा बनीं रहती है किन्तु व्यवस्था की दृष्टि से अन्धकार होने से पूर्व ही जम्बूद्वीप के दरवाजे बन्द कर दिए जाते हैं।

सुदर्शन मेरु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

उपरोक्त वर्णित सुमेरु पर्वत का निर्माण सन् १९७९ में हुआ पुनः उसका पंचकल्याणक महोत्सव भी २९ अप्रैल से ३ मई १९७९ तक सम्पन्न हुआ था। इस महोत्सव से पूर्व ज्ञानमती माताजी अपने संघ सहित दिल्ली में धर्मप्रभावना कर रही थीं। संस्थान के कार्यकर्त्ताओं ने पू० माताजी से मेले में पधारने का आग्रह किया उस समय प्रथम बार माताजी के संघ को जम्बूद्वीप स्थल पर ही ठहराया गया।

स्थल पर फ्लैट का प्रथम निर्माण

सन् १९७८ में हस्तिनापुर में पू० आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज पधारे उसी समय दिल्ली से सेठ उम्मेदमल जी पांड्या सपरिवार दर्शनार्थ आए थे। महाराज श्री ने यहाँ पर स्थानाभाव देखकर पांड्या जी को प्रेरणा दी उनकी प्रेरणानुसार दो कमरे, बाथरूम, लैट्रीन, रसोई, स्टोर सहित फ्लैट का निर्माण हुआ। धीरे-धीरे और प्रगति हुई, दानियों की भावनाएँ हुई अतः इन्हीं फ्लैट के ऊपर २-३ कमरे बनाए गए। सुदर्शन मेरु प्रतिष्ठा महोत्सव का समय नजदीक आ रहा था माताजी के संघ का आगमन होने वाला था। संघ को ठहराने के लिए इन्हीं फ्लैट के सामने फूस की २-३ झोपड़ियाँ बनाई गईं उन्हीं में माताजी को ठहराया गया। प्रतिष्ठा के २-४ दिन पूर्व उम्मेदमल पांड्या महोत्सव की व्यवस्था देखने हेतु हस्तिनापुर आये और उन्होंने माताजी को आग्रहपूर्वक फ्लैट में ठहराया, स्वयं वे टेण्टों में ठहरे यह उनकी गुरुभक्ति का नमूना था।

सुदर्शन मेरु जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव के कार्यक्रम प्रारम्भ हुए इसी सुअवसर पर पूज्य मुनि श्री श्रेयांस सागर जी महाराज जो १० जून सन् १९९० को चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा के पंचम पट्टाचार्य बने अपने संघ सहित पधारे उन्हीं के कर-कमलों से समस्त प्रतिमाओं को सूरिमंत्र प्रदान किए गए। मुनि श्री के साथ में आर्यिका अरहमती माताजी और श्रेयांसमती माताजी थीं (जो क्रम से उनकी गृहस्थावस्था की माँ और पत्नी थीं) पू० ज्ञानमती माताजी के साथ आर्यिका श्री रत्नमती माताजी और शिवमती माताजी थीं। यह

तो सर्वविदित ही है कि रत्नमती जी ज्ञानमती माताजी की जन्मदात्री माँ हैं जो स्वयं ज्ञानमती माताजी का शिष्यत्व स्वीकार करके रत्नत्रय साधना की ओर अग्रसर थीं। पू० रत्नमती माताजी ने अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण जम्बूद्वीप रचना के निमित्त हस्तिनापुर में सर्दी, गर्मी, मच्छर आदि अनेकों कष्टों को सहन करके सदैव माताजी को सहयोग दिया तभी निर्विघ्न रूप से जम्बूद्वीप का सफलतापूर्वक निर्माण हो सका।

भारत की समस्त जैनसमाज एवं महोत्सव समिति के सफल संयोजन में यह प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमल जी ने तन्मयता के साथ महोत्सव कराया। इस प्रतिष्ठा में भगवान शांतिनाथ जी विधि नायक थे जिनके माता-पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ कटक निवासी सेठ श्री पूषराज जी एवं उनकी धर्म-पत्नी को।

सर्वोत्तम दर्शनीय पैड़

इस महोत्सव में सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र वह पैड़ बनी जिसके द्वारा ८४ फुट ऊँचे सुमेरु पर्वत के ऊपर पांडुक वन में जाकर भगवान का जन्माभिषेक किया गया। यह पैड़ लोहे के पाइपों से दिल्ली निवासी श्री नरेश कुमार बंसल ने अथक परिश्रम के द्वारा बनवाई। इस पैड़ को देखने के लिए हजारों नरनारी प्रतिदिन आकर ऊपर चढ़कर भगवान का अभिषेक करके आनंदित होते थे। ३० अप्रैल १९७९ को भगवान शांति-नाथ का जन्म अभिषेक महोत्सव इसी मेरु की पांडुक शिला पर सौधर्मादि इन्द्रों द्वारा किया गया था वह मनोरम दृश्य साक्षात् अकृत्रिम मेरु पर चढ़ते हुए इन्द्र परिकर का सा आनन्द उपस्थित कर रहा था।

इस प्रकार से विविध आयोजनों के साथ में प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ ३ मई ७९ को १६ जिनबिम्ब सुदर्शन मेरु के भद्रसाल, नन्दन, सौमनस और पांडुक वनों में विराजमान हो गईं जिसके फलस्वरूप जीवन्त मेरु अप्रतिम प्रतिभा का धनी हो गया और मानवमात्र के मनोरथ सिद्ध करने लगा।

इसके पश्चात् तो जम्बूद्वीप स्थल पर मई सन् १९८५ में "जम्बूद्वीप जिनबिम्ब प्रतिष्ठापना महोत्सव" विशाल स्तर पर हुआ जिसमें देश भर से लाखों यात्रियों ने हस्तिनापुर पधारकर जम्बूद्वीप रचना के दर्शन

किये। आचार्य श्री परम पूज्य धर्मसागर जी महाराज के संघस्थ साधुगण इस महामहोत्सव में पधारे। पुनः मार्च सन् १९८७ में "श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं ब्र० श्री मोतीचन्द जी की क्षुल्लक दीक्षा सम्पन्न हुई। इस महोत्सव में परमपूज्य आचार्यरत्न श्री विमलसागर जी महाराज का ससंघ पदार्पण हुआ। इसके बाद मई सन् १९९० में (श्री महावीर जिन पंचकल्याणक महोत्सव" हुआ। यह मेला "जम्बूद्वीप महामहोत्सव" के नाम से आयोजित किया गया था। पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के निर्देशानुसार प्रत्येक पांच वर्षों के बाद यह "जम्बूद्वीप महामहोत्सव" व्यापक स्तर पर मनाया जाता रहेगा। इसी शृँखला में सन् १९९० का प्रथम महामहोत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

पूज्य माताजी के सानिध्य में जम्बूद्वीप स्थल पर मुख्य रूप से चार पंचकल्याणक महोत्सव हुए हैं किन्तु सन् १९७५ में बड़े मन्दिर और जल मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ही यहाँ के कल्पवृक्ष भगवान महावीर स्वामी भी प्रतिष्ठित हुए थे इस अपेक्षा से यहाँ की पांच पंचकल्याणकों में पूज्य माताजी के आर्यिका संघ का सानिध्य प्राप्त हो चुका है।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन का शुभ संकल्प

१८ जुलाई १९८१ का वह शुभ दिवस, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर नवनिर्मित धर्मशाला न०-२ के कमरा नं०-१२ मे प्रथम मीटिंग थी। आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने मस्तिष्क में जम्बूद्वीप क मॉडल को सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कराने हेतु एक भाव सजोया था उसी के विचार हेतु यह मीटिंग बुलाई गई थी। ८ दिन पूर्व से आयोजित इन्द्रध्वज मण्डल विधान विशाल पैमाने पर चल रहा था। अनेक स्थानों के महानुभाव विधान में भाग लेने आए हुए थे। मीटिंग के विषय से प्रभावित होकर कई विद्वान एवं श्रीमान् भी आज की तारीख मे हस्तिनापुर पधारे।

मध्याह्न १.०० बजे से मीटिंग प्रारम्भ हुई मंगलाचरण किया पंडित श्री कुंजीलाल जी गिरिडीह वालों ने। सस्थान के मंत्री रवीन्द्र कुमार जी ने कार्यक्रम की रूपरेखा बताई—माताजी की यह इच्छा है कि जम्बूद्वीप के एक मॉडल को रथ के रूप में सुसज्जित करके सारे हिन्दुस्तान मे उसका भ्रमण कराया जाए ताकि अहिंसा और नैतिकता का व्यापक

प्रचार होकर जम्बूद्वीप का महत्त्व जनसामान्य तक पहुँच सके। सर्वप्रथम उस भ्रमण करने वाले रथ के नाम पर विचार करने का निर्णय हुआ तदनुसार उपस्थित समस्त महानुभावों के नाम प्रेषित किए।

१– जम्बूद्वीप रथ

२– जम्बूद्वीप ज्ञान रथ

३– ज्ञानचक्र

४– जम्बूद्वीप चक्र

५– जम्बूद्वीप ज्ञान चक्र

इत्यादि कई नाम प्रेषित हुए किन्तु कोई नाम निश्चित नहीं हो सका अन्त में एक नाम आया—जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति। जो सर्वसम्मति पूर्वक पास किया गया। उसमें यह निर्णय लिया गया कि जम्बूद्वीप का मॉडल बनाकर बिजली, फौव्वारों से सुसज्जित करके एक वाहन पर समायोजित किया जाए ज्ञान के प्रतीक में विस्तृत साहित्य का प्रचार किया जाए एवं ज्योति शब्द को द्योतित करने के लिए एक विद्युतज्योति प्रज्वलित की जाए। यह तो रहा जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के रथ के समायोजन का शुभसंकल्प। अब इस महती योजना को सफलतापूर्वक संचालन करने के लिए उपस्थित समस्त विद्वानों ने सहयोग प्रदान करने हेतु अपने-अपने अभिप्राय व्यक्त किए—सर्वप्रथम पं० बाबूलाल जी जमादार, प० कुंजी लाल जी, श्री नरेन्द्र प्रकाश जी प्राचार्य फिरोजाबाद, डॉ० श्रेयांस कुमार बड़ौत, डॉ० सुशील कुमार मैनपुरी, श्री शिवचरण जी मैनपुरी आदि अनेकों विद्वानो ने अपना पूर्ण सहयोग देने को कहा। सफलतापूर्वक मीटिंग की कार्यवाही चली जिसमे कतिपय श्रीमन्तों की ओर से यह एक सुझाव भी आया कि यह सब कुछ करने का प्रयोजन तो एक ही है—जम्बूद्वीप का निर्माण कराना। अतः इन सब झंझटों और ऊहापोहों से तो अच्छा है कि हम ५० श्रेष्ठियों से एक-एक लाख रुपया लेकर ५० लाख रुपया एकत्र करके जम्बूद्वीप को बना देंगे। ज्ञानज्योति के भ्रमण में तो पैसा और शक्ति दोनों लगेगा जो बड़ा कठिन कार्य है। पूज्य माताजी ने उनके इस प्रस्ताव को सुना किन्तु माताजी के गले यह बात नहीं उतरी उन्होंने उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा—हमें मात्र जम्बूद्वीप नहीं बनाना है प्रत्युत सारे देश में जैन भूगोल, अहिंसा धर्म और चरित्र निर्माण की योजना का प्रचार करना है। जैन समाज में पैसे की कमी नहीं है

किन्तु जन जन का आर्थिक एवं मानसिक सहयोग पाकर यह रचना सम्पूर्ण विश्व की बने मेरी यह भावना है। माताजी के पास में मोतीचन्द और रवीन्द्र कुमार ये दो प्रमुख स्तम्भ ऐसे रहे जिनके सबल कन्धों पर जम्बूद्वीप निर्माण जैसे महान कार्य को प्रारम्भ किया था और उन्हीं के ऊपर ज्योति प्रवर्तन के कार्य का बीड़ा उठाया। कमेटी तो कार्य प्रारम्भ होने पर सहयोग देती ही रही है और देगी ही। इन्हीं दृढ़ संकल्पों के आधार पर माताजी ने निर्णय लिया कि ज्योति का प्रवर्तन अवश्य होगा। कुल मिलाकर जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति प्रवर्तन की बात तय हुई अब प्रश्न यह उठा कि इसका उद्घाटन कहाँ से और किसके द्वारा कराया जावे ?

ज्योति प्रवर्तन राजधानी से—

त्रिलोक शोध संस्थान के कार्यकर्ताओं ने पू० माता जी के समक्ष निवेदन किया कि आपकी भावनानुसार इस ज्योतिरथ का प्रवर्तन देहली से राजनेता के द्वारा कराया जाए तो इसका राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान भी होगा और व्यापक रूप में अहिंसा धर्म का प्रचार भी होगा। इसकी प्रारम्भिक रूपरेखा एवं प्रवर्तन उद्घाटन जैसा महान कार्य आपके आशीर्वाद के बिना सम्भव नहीं है अतः आप दिल्ली विहार का विचार बनाइये। यद्यपि पू० माता जी की इच्छा दिल्ली के लिए विहार करने की बिल्कुल भी नहीं थी किन्तु लोगों के अति आग्रह से चातुर्मास के पश्चात् दिल्ली के विहार का प्रोग्राम बनने लगा। संघस्थ आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की बिल्कुल इच्छा नहीं थी दिल्ली जाने की, क्योंकि दिल्ली का वातावरण उनके स्वास्थ्यानुकूल नहीं पड़ता था, लेकिन इस महान कार्य की रूपरेखा सुनकर वे भी मना न कर पाईं और आर्यिका संघ का मंगल विहार फाल्गुन वदी ३ सन् १९८२ मार्च में हो गया। १५ दिन में माता जी दिल्ली पहुँच गईं।

ऐतिहासिक प्रवर्तन का पूर्व संचालन मोरीगेट से—

दिल्ली मोरीगेट की जैन समाज के विशेष आग्रह पर संघ वहीं पर जैन धर्मशाला में ठहरा। अब तो सबका यही लक्ष्य था कि जम्बूद्वीप का सुन्दर मॉडल शीघ्र तैयार कराया जाए और भारत की तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के कर-कमलों से ज्योति का उद्घाटन कराया जाए।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि—

बड़े-बड़े कार्यों में प्राय: विघ्न भी आया ही करते हैं। ज्ञानज्योति प्रवर्तन की व्यापक रूपरेखा सुन-सुनकर कतिपय विघ्न संतोषियों ने अपना कार्य शुरू कर दिया। कई ज्योतिषियों की भविष्यवाणी हुई कि ज्योति प्रवर्तन कदापि नहीं हो सकता है, इन्दिरा जी किसी कीमत पर नहीं आ सकती हैं। एक ज्योतिषाचार्य जी ने कहा कि प्रधानमन्त्री द्वारा उद्‌घाटन का तो कोई प्रश्न ही नहीं है, एवं ढाई महीने से अधिक रथ का भ्रमण हो ही नहीं सकता है ····इत्यादि अनेकों बातें अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार लोग कहने लगे किन्तु ज्ञानमती माता जी के ऊपर किसी की बात का कभी असर नहीं हुआ उन्होंने सदा संस्था के कार्यकर्त्ताओं को भी यही उपदेश दिया है कि "अपने कार्य में सदा लगे रहो, बुराई करने वाले का कभी प्रतीकार मत करो, संघर्षों को चुनौती समझकर पुरुषार्थ करने में पीछे मत रहो" इन्हीं सूक्तियों के अनुसार मोतीचन्द-जी, रवीन्द्र कुमार जी व पं० बाबूलाल जी जमादार तथा अन्य पदाधिकारीगण अपने कार्य में लगे रहे।

प्रधानमन्त्री के पास डेपुटेशन—

त्रिलोक शोध संस्थान का एक डेपुटेशन प्रधानमन्त्री के निवास स्थान पर उद्‌घाटन प्रस्ताव लेकर पहुँचा। थोड़ी देर की बातचीत के बाद इन्दिरा जी ने स्वीकृति नहीं दी। कई बार उच्चाधिकारियों के द्वारा कोशिशें कराई गई किन्तु सब व्यर्थ था। जब प्रधानमन्त्री के आने की विशेष उम्मीद नहीं दिखी तब कई लोगों ने माता जी से अनुरोध किया कि इसका प्रवर्तन किसी सामाजिक व्यक्ति से करवा कर प्रारम्भ किया जाए। किन्तु माता जी ने यही कहा कि यह धर्म प्रचार का कार्य है, इन्दिरा जी अवश्य आयेंगी यह मुझे विश्वास है।

जे० के० जैन का अमूल्य सहयोग—

प्रधानमन्त्री जी को लाने के प्रयास बराबर जारी रहे। एक बार यह ज्ञात हुआ कि संसद सदस्य जे० के० जैन इन्दिरा जी के निकटवर्ती है, अत: उनसे सम्पर्क किया गया, उन्होंने प्रयास करने का वचन दिया। होनहार की बात उन दिनों मोतीचन्द जी, रवीन्द्र जी और हम लोग कोई दिल्ली में नहीं थे। अथक प्रयासों के बाद २५ मई १९८२ को जे० के० जैन का टेलीफोन डा० कैलाशचन्द जी के पास पहुँचा कि प्रवर्तन के

लिए इन्दिरा जी ने स्वीकृति प्रदान कर दी है। डा० साहब ने आकर माता जी को खुशखबरी सुनाई और दूसरे दिन हम लोग जब जयपुर से आए तो यह समाचार ज्ञात हुआ पुनः २-३ दिन बाद ४ जून ८२ के उद्घाटन की तारीख निश्चित हो गई। बस क्या था सबकी भावनाएँ सफल हुईं तैयारियां अब बहुत जोरों से होने लगीं। समय भी अल्प ही था किन्तु मोतीचन्द, रवीन्द्र कुमार जी के साथ समस्त कार्यकर्ता उत्साह-पूर्वक जुटे हुए थे। सारी देहली में प्रचारार्थ खूब बैनर लगाए गए, पूरे देश में खबरें भेजी गईं, दैनिक अखबारों में प्रतिदिन विज्ञापन छपने लगे और नये ट्रक चेचिस में जम्बूद्वीप का सुन्दर मॉडल सुसज्जित किया गया जिसका "जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति" रथ के नाम से प्रवर्तन प्रारंभ होने वाला था।

ऐतिहासिक दिवस—

देखते ही देखते ४ जून की तारीख भी आ गई। २ जून से ही लालकिला मैदान में विशाल पंडाल और मंच बनाने की व्यवस्था चल रही थी। सुमेरु पर्वत के आकार का सुन्दर द्वार पंडाल के प्रमुख प्रवेश द्वार पर बनाया गया। सारी देहली में प्रधानमन्त्री के स्वागतार्थ तरह-तरह के सुन्दर तोरण बनाए गए। मंच की सारी व्यवस्थाएँ जे० के० जैन देख रहे थे वह फूलों से और दीपों से सजा हुआ मंच अपने अतिथि का आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था। सभा मच के बायीं ओर पूज्य ज्ञानमती माताजी, रत्नमती माताजी और शिवमती माताजी के लिए अलग मंच बनाया गया एवं मच के दायीं ओर एक फूस की झोपड़ी थी जहां माताजी सभा से पूर्व बठी हुई थीं आने जाने वाले दर्शनार्थियों को उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा था।

इंदिरा जी का आगमन और सर्वप्रथम माताजी का आशीर्वाद—

मध्याह्न के ठीक २·३० बजे जन-जन का स्वागत स्वीकार करती हुई प्रधानमन्त्री की कार उस ऐतिहासिक लालकिला मैदान में प्रविष्ट हुई उनके साथ में गृहमन्त्री श्री प्रकाशचन्द सेठी, केन्द्रीय मन्त्री एवं कई संसद सदस्य भी आए। श्री जे० के० जैन ने सर्वप्रथम इन्दिरा जी व सभी साथियों को पू० माताजी के दर्शन कराए अनंतर सभी लोग मंच पर आ गए किन्तु इन्दिरा जी माताजी से कुछ व्यक्तिगत वार्ता करने हेतु वहीं रुक गई। एक महिला होने के नाते उन्होंने पूज्य माताजी से अपने हृदय

के कुछ उद्‌गार व्यक्त करते हुए समाधान पूछा, बातें तो जो और जिस रूप में उन्होंने की हों यह मुझे नहीं मालूम, किन्तु इन्दिरा जी की धर्म के प्रति जो निष्ठा और विश्वास मैंने देखा वह सचमुच अविस्मरणीय है। एक पैण्डल में यंत्र रखकर दिया जिसे उन्होंने श्रद्धावनत होकर तत्काल गले में पहन लिया। इसके साथ ही माताजी ने एक मूँगे की माला पर करोड़ों मंत्रों का जाप्य किया था उस माला को उन्हें देते हुए कहा कि इस माला के द्वारा प्रतिदिन "ॐ नमः" मंत्र की एक माला अवश्य फेरें, इन्दिरा जी सिर झुकाकर सहर्ष उस माला को भी गले में डालकर बहुत प्रसन्न हुई। उन्होने २० मिनट तक माताजी से बातचीत की और असीम शांति का अनुभव किया इस मध्य माताजी और इन्दिरा जी के सिवाय अन्य कोई भी वहां उपस्थित नहीं था।

उधर माताजी और प्रधानमन्त्री का वार्तालाप चल रहा है इधर हजारों की संख्या में उपस्थित जनसमुदाय आतुरतापूर्वक अपने प्रिय नेता की प्रतीक्षा कर रहा है। २० मिनट बाद पू० माताजी अपने मंच पर पधारीं और प्रधानमन्त्री अपने मंच पर। इनके पदार्पण करते ही सारी जनता ने करतल ध्वनि की गड़गड़ाहट पूर्वक स्वागत किया उस स्वागत का प्रत्युत्तर इन्दिरा जी ने हाथ जोड़कर अभिवादन पूर्वक दिया। सभा का कार्यक्रम अपनी गति से चला। पूज्य माताजी ने अपना आशीर्वाद सभी को प्रदान किया।

卐--卐

परम पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के आशीर्वचन

"ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः"

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्त पर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थ मालिका यत्र ।।

युग की आदि में तीर्थंकर ऋषभदेव जब राज्य सभा में विराजमान थे प्रजा ने आकर अपनी समस्या रखी कि हे देव अभी तक हम लोग कल्पवृक्ष से भोजन आदि सामग्री प्राप्त करते आये थे और आज वह कल्पवृक्ष फल नहीं दे रहे हैं तो हम अपनी आजीविका का पालन कैसे करें तथा अपना जीवन यापन कैसे करें ? तीर्थंकर ऋषभदेव उसी समय उसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत विदेह क्षेत्र में जो स्थिति है वे सोचते हैं कि आज इस पृथ्वी पर वही विदेह क्षेत्र की स्थिति प्रवृत्त करना योग्य है और उनके स्मरण मात्र से इन्द्र आ जाता है। अयोध्या, हस्तिनापुर आदि नगरी की रचना करता है और भगवान प्रजा को असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, कला इन ६ प्रकार की आजीविकाओं का उपाय बतलाते हैं। मैं आपको यह बतला रही थी कि जिस विदेह की स्थिति को देखकर सोचकर तीर्थंकर ऋषभदेव ने युग की आदि से इस पृथ्वीतल पर ६ क्रियाओं का उपदेश दिया वह विदेह क्षेत्र इसी जम्बूद्वीप के बीचों बीच में है। उसी विदेह क्षेत्र में सुमेरु पर्वत है जो एक लाख योजन ऊंचा है उससे और स्वर्ग में मात्र केवल एक बाल का अन्तर है यानी वह मध्यलोक का मापदण्ड है। उस सुमेरु पर्वत पर ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों का जन्माभिषेक मनाया जा चुका है। अनेक-अनंत-अनंत तीर्थंकरों का जन्माभिषेक उस पर मनाया जा चुका है। और भविष्य में भी इसी पर्वत पर अनंत-अनंत तीर्थंकरों का जन्माभिषेक मनाया जायेगा। यही कारण है कि यह पर्वत महान पूज्य है, जो कि जम्बूद्वीप के बीचों बीच में है। आज भी आप लोग पंडितों के मुख से, पुरोहितों के मुख सुनते होंगे प्रशस्ति के उच्चारण में किसी भी संकल्प में जम्बूद्वीपे, भरत क्षेत्रे, आर्यखण्डे इत्यादि रूप से तो यह भरत क्षेत्र इसी जम्बूद्वीप का ही एक हिस्सा है। जो कि जम्बूद्वीप के एक सौ नब्बे वां भाग प्रमाण है। इस भरतक्षेत्र

के आर्यखण्ड में ही आज का उपलब्ध सारा विश्व है। इस जम्बूद्वीप की रचना में आज उपलब्ध पृथ्वी के अतिरिक्त भी पृथ्वी इस भूमण्डल पर है यह दिशा निर्देश वैज्ञानिकों को दिया जा रहा है। हमारे यहां साधन कुछ अल्प हैं वैज्ञानिकों के यांत्रिक साधन विशेष हैं और वे खोज में आगे बढ़कर के आपके सामने कुछ न कुछ नई चीज उपस्थित करेंगे, ऐसा पूर्ण विश्वास है। हमारे महर्षियों ने यह बतलाया था कि पेड़ और पौधों में भी जीव है आज के युग में वैज्ञानिकों ने भी सिद्ध कर बतलाया कि हां पेड़ और पौधों में भी जीव है। ऐसे अनेक विषय हैं जिन्हें वैज्ञानिकों ने सिद्ध करके स्वीकार कर लिया है कि महर्षियों का कथन सत्य है। इस प्रकार से मैं बतला रही थी कि जो आर्यखण्ड है ये हमारा जिसमें हम लोग रहते हैं अनादिकाल से और इस युग की आदि से यह समझिये अनेक महापुरुषों ने यहां जन्म लिया है। ये महर्षियों की पुण्यशाली तपस्वियों का क्षेत्र है। यहां पर अपनी साधना और तपस्या के बल से अपने को तो पवित्र बनाया ही बनाया परन्तु देश में सतचारित्र का निर्माण करके तमाम प्राणियों को पवित्र बनाया है और सुख शांति की स्थापना की है। मुझे जैन रामायण की एक सूक्ति याद आती है—

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः।
षष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥

जिस देश का आश्रय करके साधु तपस्या करते हैं वहां के शासक उनका प्रतिपालन करने से उन साधुओं की तपश्चर्या का छटा भाग पुण्य प्राप्त कर लिया करते हैं। तो मैं ये स्पष्ट कहूंगी कि साधुओं के तपश्चरण का पुण्य इन्दिरा जी को स्वयं ही मिल रहा है। वे उस पुण्य को स्वयं ही ले लिया करती हैं यह इस भारत भूमि का एक विशेष माहात्म्य है। वास्तव में ये तो कहना ही पड़ेगा कि इन्दिरा जी का बहुत बड़ा सौभाग्य है। इस दशक में मैंने अनुभव किया अनेक धार्मिक आयोजनों में वे अपने अमूल्य समय को निकाल कर भाग लेती आ रही हैं। जैन समाज का भी यह गौरव कम नहीं है कि जैन समाज के प्रति उनकी कितनी प्रीति है और उनके प्रति जैन समाज की कितनी प्रीति है ये तो आप लोगों के अनुभव में ही आ रहा है। धर्मचक्र का प्रवर्तन भी उन्हीं के हाथ से होना, मंगल-कलश का प्रवर्तन भी उन्हीं के हाथ से होना और आज देखिये ये जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति प्रवर्तन का पुण्य अवसर भी उन्हीं को मिल रहा है। आप सोचेंगे एक प्रधानमंत्री के प्रधानमंत्रित्वकाल में इतने-इतने

आयोजन होवें और उन्हें ही पुण्य अवसर मिले यह कम पुण्य की बात नहीं है। मैं यही कहूंगी कि सचमुच में इन्दिरा जी जैसी साहसी महिला नारीरत्न जिनने इस युग में एक क्रान्ति लाई है सचमुच में यह ज्योति उनके हाथ से प्रवर्तित होकर न जाने भारत के कितने प्राणियों के हृदय के अंधकार को दूर करेगी, कितने मानुष के अंधकार को दूर करेगी। देखिये संसार में अज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई अंधकार नहीं है। और ज्ञान से बढ़कर विश्व में दूसरा कोई प्रकाश नहीं है। यह ज्ञान ज्योति सारे भारतवर्ष में भ्रमण कर कोने-कोने में प्राणियों के अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करे और ज्ञान का प्रचार करे उसके साथ ही साथ सुख और शांति को सारे विश्व में स्थापना करे और प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के शुभ हस्तों से ऐसे-ऐसे पुण्य कार्य सदैव होते रहें तथा यह जनतंत्र शासन जनता में धर्मनीतिमय अनुशासन करता रहे। मेरा यही शुभाशीर्वाद है।

卐--卐

जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति प्रवर्तन के शुभ अवसर पर ४ जून १९८२ को प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी का भाषण

"पूज्य ज्ञानमती माताजी और उपस्थित सज्जनों, भाइयों और बहनों !

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि इस शुभ अवसर पर आपने मुझे बुलाया है। जब ऐसा अवसर होता है विशेष करके धार्मिक अवसर, जब देश के दूर-दूर से बहन और भाई सब लोग आते हैं तो भारत की एकता का एक दृश्य देखने को मिलता है। हमारा भारत एक ऐसा देश है जहां प्रायः विश्व के सभी धर्म हैं। हमारी नीति रही है कि सभी धर्मों का आदर हो, किसी का भी किसी प्रकार से न अपमान हो, न नीचा करने की कोई बात हो। क्योंकि सभी धर्म में कुछ ऐसे हिसाब होते हैं जो व्यक्ति को ऊपर उठाने की कोशिश करते हैं। जो उसकी आत्मा को शक्ति देते हैं, ताकत देते हैं, और जो जीवन की सख्त कठिनाइयां होती हैं जैसे सभी के जीवन में होती हैं चाहे कोई बड़ा हो या छोटा हो, उसका सामना करने की ताकत देता है। जैसे व्यक्ति को मिलता है उसी प्रकार से अगर सारे देश में धर्म का आदर होगा तो सारा देश ऊपर उठेगा। हमारा प्रयत्न यही है कि इस देश को ऊँचा उठाया जाये। आर्थिक दृष्टिकोण से लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठे, गरीबी कम हो, पिछड़ापन हट जाये लेकिन केवल आर्थिक प्रगति काफी नहीं है, यह शुरू से ही गांधी जी तथा अन्य नेताओं ने हमको बतलाया कि संग-संग भारत की संस्कृति, भारत की सभ्यता, भारत की परम्परा और भारत के ऊँचे विचार इन चीजों पर यदि ध्यान ही नहीं दिया जायेगा तो केवल आर्थिक प्रगति से देश महान नहीं हो सकेगा।

जम्बूद्वीप का वर्णन हमारे सभी शास्त्रों में है जैसे बौद्धिक, जैन धर्म के और वैदिक में जो वर्णन है वह केवल भारतवर्ष का नहीं है उससे बहुत बड़ा है इससे कोई यह न समझे कि हमारी नीयत दूसरों पर है या हम दूसरों से कुछ चाहते हैं। हम अपनी धरती से और अपनी जनता से

ही संतुष्ट हैं। और यूं तो इनकी सेवा करना इतना बड़ा काम है कि प्रयत्न ही हम कर सकते हैं। यह सारी सफलता एक पुस्त या सारी पुस्त में भी नहीं मिल सकती है। लेकिन कम से कम गांधी जी तो कहते थे कि वह इतनी बड़ी ही लड़ाई है जैसे स्वतन्त्रता संग्राम। सम्मुख लड़ाई के लिये भी जो शक्ति चाहिये और जो साहस चाहिये वह धर्म के द्वारा ऊँची विचारधारा ऊँचे मूल्यों के द्वारा मिल सकते हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि मनुष्य जाति एक ऐसे समय जब विज्ञान के द्वारा जानकारी बहुत बढ़ी है, जब बहुत सी प्राकृतिक ताकतें काबू में आई हैं, बड़े-बड़े काम मनुष्य कर सकता है ऐसे समय बजाय इसके कि इस ताकत को वो उसमें लगायें जो हमारे दुर्बल भाई और बहन हैं उनको उठायें, जो दुर्बल देश हैं उनकी सहायता करें। मनुष्य जाति इस ताकत को अक्सर लड़ाई-झगड़े में लगाती है, एक दूसरे से मुकाबला करने में, नीचे घसीटने में। लेकिन कभी-कभी धर्म के बारे में भी आपने देखा होगा कि इधर कुछ कौमी दंगे हुए जिससे कुछ ऐसी घटनायें हुई जिससे किसी न किसी धर्म का, लगता था कि कोई अपमान करना चाहता है। यह हमारी भारतीय परम्परा में नहीं है और न किसी भी धर्म में ऐसा कहा है। और मेरी जब-जब बातें हुई लोगों से, तो देखा कोई ऐसा नहीं चाहता है। हम सब लोगों की बड़ी कोशिश होनी चाहिये कि हम कौमी एकता एवं सब धर्म में आदर विशेष करें क्योंकि ये अफवाह उड़ाई गई है कि शायद मैं हिन्दू धर्म को नहीं चाहती, यह कैसे हो सकता है। मैं एक धार्मिक परिवार से आई हूँ एक परम्परा में मेरा पालन-पोषण हुआ जिसमें धर्म का, भारत की संस्कृति, सभ्यता का आदर, यहां यह सिखलाया गया कि ऊँचा रखने के लिये कोई भी कुर्बानी देने के लिये तैयार होना चाहिये। तो हम तो ऐसा विचार कर हो नहीं सकते कि किसी भी प्रकार से धर्म पर कोई हमला हो, अपमान हो या नीचा दिखाया जाये। हमारी उल्टी यही कोशिश है कि धर्म ऊँचा होगा तो हम समझते हैं समाज ऊँचा होगा, देश ऊँचा होगा और देश को बल मिलेगा। जो अपने देश के भीतर की कठिनाइयाँ और अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाई का भी वह सामना कर सकेगा। जैन धर्म के जो ऊँचे विचार हैं वे भी भारत की धरती से निकले हैं। भारत की विचारधारा से निकले और स्वयं उसी विचारधारा पर अपना प्रभाव गहरा डाले हैं। आप सबका जो भारत है व जो किसी का भी कुछ धर्म है मैं सोचती हूँ कि वे जैन धर्म के ऊँचे विचार हैं, उनको सभी मानें। हमें मालूम है कि हमारी आजादी की लड़ाई में कितना महत्व इन

विचारों को गांधी जी ने दिया। वे चूंकि हमारे नेता थे और उनके चरणों में बैठ के हमने सीखा, तो हमारे भी रोयें-रोयें में ये चीजें आती हैं। हमारा आन्दोलन अहिंसा का था जो कि दुनिया के इतिहास में कभी नहीं देखा था। सबसे पहले बड़ा आन्दोलन इस रास्ते से हुआ। इसी प्रकार से हमें देखना है कि आजकल के जीवन में चाहे गरीबी हटाने का कार्यक्रम हो, दूसरा कार्यक्रम हो, देश को बलवान बनाने का कार्यक्रम हो, इसी रास्ते से बन सकता है। अहिंसा के रास्ते से, सहनशीलता के रास्ते से, सादगी में रहने से, इतनी बातें भगवान महावीर ने अपने जो वचन से छोड़ी हैं हमारे संग, वो चीजें हैं जो देश को मजबूत करती हैं ऊपर उठाती हैं। यह प्रसन्नता का विषय है कि पूज्य ज्ञानमती माताजी ने यह जम्बूद्वीप का मॉडल बनवाकर तथा जो हस्तिनापुर में बनाया जा रहा है इससे लोग इसके बारे में ज्यादा से ज्यादा ठीक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। और जहाँ-जहां यह रास्ते में जायेगी, वहाँ भी इसके द्वारा एक नई धार्मिक भावना जगेगी। मैं आपके सामने आभार ही प्रकट कर सकती हूं कि ऐसे शुभ अवसर पर आपने मुझे बुलाया कि मैं इसका प्रवर्तन करूँ। यह देखकर मुझे बहुत खुशी है और माताजी को भी धन्यवाद देती हूँ।"

तब चरणों में सब झुकते हैं!

सन् १९७९ में सुमेरु पर्वत के जिनचैत्यालयों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में मंत्री उत्तर प्रदेश के रेवतीरमण जी आये थे। सन् १९८० में अक्टूबर में माताजी के जन्म दिवस पर केन्द्रीय नागरिक उड्डयन मंत्री ए०पी० शर्मा और केन्दीय मंत्री श्री प्रकाचंद सेठी आये थे। पूज्य माताजी के सानिध्य में सन् १९८२ में दिल्ली के लालकिला मैदान में तत्कालीन भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पधारकर जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति के मॉडल का शुभ प्रवर्तन प्रारम्भ किया था। पूज्य माताजी के सानिध्य में ३१ अक्टूबर सन् १९८२ में दिल्ली में जम्बूद्वीप सेमिनार का उद्घाटन श्री राजीव गाँधी ससंद सदस्य ने किया था।

माताजी के शुभाशीर्वाद से उन्हीं के सानिध्य में सन् १९८५ के जम्बूद्वीप जिनबिंब प्रतिष्ठापना समारोह की रूपरेखा बनाने के लिए नारायणदत्त तिवारी मुख्यमंत्री तत्कालीन उत्तर प्रदेश ने आकर यहाँ हस्तिनापुर में रत्नत्रयनिलय में बैठकर कमेटी के कार्यकर्ताओं से घंटों चर्चायें की थी।

प्रो० वासुदेवसिंह ने इस जंबूद्वीप को जगमगा दिया था। अक्षय तृतीया के दिन झंडारोहण करके "अन्तर्राष्ट्रीय जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान सेमिनार" का उद्घाटन किया था। पुन: २८ अप्रैल १९८५ को तत्कालीन रक्षामंत्री नरसिंहाराव ने जंबूद्वीप स्थल पर हेलीकॉप्टर से आकर "जम्बूद्वीप अखंडज्ञानज्योति" को स्थापित किया था : अनंतर नारायणदत्त तिवारी मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश ने ३० अप्रैल १९८५ के प्रतिष्ठा समारोह में पधारकर भगवान के राज्याभिषेक कार्यक्रम को देखा था और पचासों हजार की जनता को संबोधन करके साधुवर्गों और पूज्य माताजी का शुभाशीर्वाद ग्रहण कर जंबूद्वीप का उद्घाटन करके विद्युत दीपों और फव्वारों से जंबूद्वीप को जगमगा दिया था।

इसी प्रतिष्ठा के मध्य विधानसभा अध्यक्ष श्री हुकुमसिंह भूतपूर्व राज्यपाल किदवई जी आदि अनेक नेतागण पधारे थे।

सन् १९८७ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज अपने विशाल संघ सहित यहां विराजे थे, ८ मार्च को ब्र० मोतीचंद की क्षुल्लक दीक्षा के दिवस श्री माधवराव सिंधिया तत्कालीन रेलमंत्री भारत सरकार पधारे थे।

सन् १९९० में जबूद्वीप महामहोत्सव एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में श्री अजितसिंह तत्कालीन उद्योगमंत्री भारत सरकार और बी० सत्य-नारायण रेड्डी महामहिम राज्यपाल उत्तर प्रदेश पधारे थे।

सन् १९९१ के सरधना चातुर्मास में २३ अक्टूबर के दिन पूज्य माताजी के जन्मदिवस समारोह में श्री मुरली मनोहर जोशी राष्ट्रीय अध्यक्ष भारतीय जनता पार्टी और डा० जे० के० जैन राज्यसभा सदस्य पधारे थे।

जनवरी सन् १९८५ में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्रीमती मोहसिना किदवई पूज्य आर्यिका श्री के दर्शनार्थ पधारीं।

१५ फरवरी १९९२ को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री कल्याणसिंह पूज्य माताजी के दर्शनार्थ हस्तिनापुर पधारे एवं १९ अगस्त १९९२ को मध्यप्रदेश के लोकनिर्माण विभाग के मंत्री श्री हिम्मतसिंह कोठारी ने सपरिवार हस्तिनापुर पधारकर जम्बूद्वीप रचना के दर्शन किए एवं पूज्य माताजी ने शुभाशीर्वाद प्राप्त किया। यह सब पूज्य माताजी के महनीय व्यक्तित्व का ही प्रभाव है जो वे सभी को उदारतापूर्वक अपना आशीर्वाद प्रदान करती है।

यह अनेक राजनेताओं का जंबूद्वीप आदि के कार्यक्रमों में आगमन पूज्य श्री गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी के मंगल आशीर्वाद का ही सुफल है। इन नेताओं ने आकर पूज्य माताजी से राज्य में शांति हेतु अनेक चर्चायें की थीं। माताजी ने भी प्रायः सभी को मांस, मद्य आदि का त्याग कराकर अनेक उपदेश देकर धर्म के यंत्र, मंत्र, जपमाला आदि भी दिये हैं। यहां हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर हमेशा एम० एल० ए०, एम० पी०, आइ० जी०, डी० आई० जी० कमिश्नर, कलेक्टर, सुप्रिम-कोर्ट, हाईकोर्ट के न्यायाधीश आदि पधारकर पूज्य माताजी से आशीर्वाद ग्रहण करते रहते हैं तथा एन०सी०सी०, मिलिट्री आदि के कैम्प भी प्रायः हस्तिनापुर के प्राकृतिक वातावरण में आयोजित होते हैं जिनमें शिविरार्थी जम्बूद्वीप स्थल पर आकर इस गरिमामयी व्यक्तित्व के समक्ष नतमस्तक होते हुए उनसे कल्याणकारी उपदेश एवं आशीर्वाद प्राप्त करते है।

केशलोंच

दिगम्बर मुनि-आर्यिकाओं की चर्या में केशलोंच उनका एक मूलगुण है जो उत्तम, मध्यम, जघन्य विधि अनुसार दो, तीन, चार महीने में सम्पन्न करना होता है। पूज्य माताजी ने अपने ४० वर्षीय दीक्षित जीवन में १५० से अधिक बार केशलोंच किए। प्रारम्भ में तो दो से तीन माह के अन्दर ही शास्त्रोक्त मध्यम चर्यानुसार केशलोंच करना ही इन्हें इष्ट था। यह क्रम लगभग ३० वर्ष तक चला है उसके पश्चात् शारीरिक अस्वस्थता के कारण ३ से ४ माह के बीच में करने लगीं वह तारतम्य वर्तमान में भी चल रहा है।

चाहे कैसी विकट परिस्थितियां इनके जीवन में क्यों न आईं किन्तु अपने मूलगुणों के पालन में पूज्य माताजी सर्वदा सावधान देखी गईं। ये हम शिष्यों को हमेशा यही शिक्षा देती रहती हैं कि "शरीर तो भव-भव में प्राप्त होता है किन्तु संयम बड़ी दुर्लभता से मिला है। शरीर स्वास्थ्य के लिए संयम की कभी विराधना नहीं करनी चाहिये चाहे वह छूटे अथवा रहे।

इसी सूत्र का अनुसरण इन्होंने अपनी गम्भीर अस्वस्थता में भी किया है। सन् १९८५-८६ में जब म्यादी बुखार एवं पीलिया के कारण ये मरणासन्न अवस्था में थीं तो भी अपने केशलोंच के समय का इन्हें पूरा ध्यान रहा और एक दिन मुझसे बोलीं—तुम मुझे राख लाकर दे दो मैं

आज लोंच करूँगी। समय अभी ८-१० दिन शेष था ४ माह में, किन्तु उठकर अपने हाथों से ही अपने सिर के पूरे केशों का लोंच किया। मैंने कुछ सहारा लगाने का प्रयत्न भी किया किन्तु प्रारम्भ से ही अपने हाथ से करने की आदत होने के कारण धीरे-धीरे स्वयं करती रहीं मुझे एक बाल भी न उखाड़ने दिया।

इस दृश्य से हम सभी आश्चर्यचकित थे क्योंकि उन दिनों माताजी अशक्तता के कारण दीर्घ शंका, लघु शंका के लिए खड़ी भी नहीं हो पाती थी। यहाँ तक कि कुछ दिन तक करवट भी स्वयं बदलने में असमर्थ रहीं। मेरी लगभग २४ घण्टे उनके पास ड्यूटी होती थी और सभी शिष्यगण परिचर्या में लगे हुए थे।

ऐसे गम्भीर अस्वस्थ क्षणों में दो घण्टे लगातार बैठकर अपने हाथों से केश उखाड़ना मात्र कोई दैवी शक्ति एवं असीम आत्मबल का ही प्रतीक था। तपस्या की इसी दृढ़ता ने इन्हें सदैव नवजीवन प्रदान किया है। इनकी छत्रछाया मुझे भी ऐसी चारित्रिक दृढ़ता प्रदान करे यही जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना है।

अपूर्व कार्यक्षमता

उस दीर्घकालीन अस्वस्थता के पश्चात् माताजी आज भी एक स्वस्थ व्यक्ति से कहीं अधिक कार्य करती हैं। उन्हें शिष्यों का भी एक मिनट खाली बैठना पसन्द नहीं है। जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग करने की शिक्षा उनके सानिध्य से सहज प्राप्त हो सकती है। तभी तो उन्होंने सन् १९८६ की मरणोन्मुखी अस्वस्थता के बाद भी कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीनलोक, जम्बूद्वीप आदि वृहद् मंडल विधानों की रचना की तथा समयसार ग्रन्थ का अनुवाद किया, अनेक मौलिक ग्रन्थों का सृजन किया तथा वर्तमान में "सिद्धचक्र मंडल विधान" का नवीन रचना कार्य चल रहा है। अभीक्ष्णज्ञानोपयोग उनकी नियति है। प्रातःकाल हम लोगों को उनके पावन सानिध्य में धवल, जयधवल, समयसार आदि ग्रन्थों के सामूहिक स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त उनका समय अपनी दैनिक क्रियाओं में तथा स्वाध्याय और भाक्तिकों को आशीर्वाद प्रदान करने में व्यतीत होता है।

शुद्ध प्रासुक लेखनी चिरकाल तक जीवन्त रहेगी

आचार्य श्री कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, अकलंकदेव तो हमने

नहीं देखे जो हमें अपने हाथों से लिखकर अमूल्य साहित्यिक कृतियां प्रदान कर गए किन्तु उन सबका मिला जुला रूप में वर्तमान गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के अन्दर दृष्टिगत हो रहा है। जिन्होंने पूर्वाचार्यों की वाणी से अनुस्यूत एक-एक शब्द अपने ग्रन्थों में संजोया है, पापभीरुता जिनमें कूट-कूट कर भरी हुई है. मनगढंत एक शब्द भी जिनकी कृतियों में उपलब्ध नहीं हो सकता। ऐसी शुद्ध लेखनी को जग का बारम्बार प्रणाम है।

प्रासुक लेखनी से हमारे पाठक भ्रमित हो सकते हैं कि पानी, दूध तथा खाद्य पदार्थ प्रासुक किये जाते है, क्या लेखनी भी किसी की प्रासुक हो सकती है ? हाँ, लेखनी भी प्रासुक है तभी तो उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में अतिशय देखा जा रहा है। आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने जीवन में कभी बॉलपेन, बाजारू इंक, नये फैशन के पॉयलट आदि पेन प्रयोग नहीं किये, छुए भी नहीं। तब प्रश्न होता है कि इतने सारे ग्रन्थ लिखे कैसे ? सूखी नीली कोरस टिकिया का बुरादा अपने कमंडलु के जल में घोलकर फाउन्टेन पेन से डुबोकर उन्होंने सदैव लेखन कार्य किया है। चौबीस घण्टे की मर्यादा के बाद पुनः कमंडलु के गरम-प्रासुक जल से पेन की निब धोकर दूसरी नई स्याही घोलकर लिखना यही उनका दैनिक लेखन क्रम है। सन् १९६९-७० में अष्टसहस्री अनुवाद की ६ कापियाँ तो कच्ची पेंसिल से लिखी है और १ कापी स्याही से लिखी है।

मैंने प्रायः सभी लेखक आचार्यों, मुनियों, आर्यिकादिकों को बॉलपेन और इंक भरे पेन प्रयोग करते देखे हैं, मात्र एक पूज्य माताजी को ही इस प्रकार प्रासुक लेखनी से लिखते देखकर हृदय श्रद्धा से अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। पाठकों का उनकी इस विशेषता पर शायद ध्यान आकर्षित न हो किन्तु यह शुद्ध प्रासुक लेखनी आर्यिका श्री की बाह्य एवं अन्तरंग पवित्रता को चिरकाल तक दर्शाती रहेगी।

हस्तिनापुर तथा आस-पास नगरों का मंगलमयी प्रवास

भगवान ऋषभदेव की प्रथम पारणा स्थली शान्ति, कुंथु, अरहनाथ की कल्याणक भूमि एवं अनेक इतिहासों को अपने गर्भ में संजोए हुए हस्तिनापुर नगरी ऐतिहासिक एवं पौराणिक तो है ही, जम्बूद्वीप के निर्माण ने इस चेतना के स्वरों में नवजीवन प्रदान कर दिया है। अपनी कर्मभूमि एवं तपोभूमि जम्बूद्वीप स्थल पर निर्मित 'रत्नत्रय निलय' वसतिका में

प्रायः पूज्य माताजी का ससंघ वास्तव्य रहता है। उनकी शारीरिक अशक्तता ने जहाँ उन्हें हस्तिनापुर में अधिक प्रवास के लिए बाध्य किया है वहीं देश-विदेश की जनता को उनसे असीम लाभ प्राप्त हो रहा है। जम्बूद्वीप दर्शनार्थ आने वाले अधिकतर यात्रियों को यहाँ यदि आस-पास में विहार कर रहीं ज्ञानमती माताजी के दर्शन नहीं होते हैं तो वे अपनी यात्रा अधूरी समझकर उन्हें ढूंढ़ते हुए कहीं न कहीं पहुँचकर दर्शन करके ही यात्रा को पूर्ण मानते हैं।

सन् १९८९-९० में जब बड़ौत, मोदीनगर, मेरठ, अमीनगर सराय आदि नगरों में शीतकालीन प्रवास के समय देश के सुदूरवर्ती प्रान्तों से आए हुए भक्तगण स्थान का पता लगा-लगाकर दर्शनार्थ पहुँचे। उस समय बड़ौत के निकट एक **पोयस** नामक बहुत छोटे से ग्राम में विदेश (जापान) से पधारे हुए **योशिमाशा मिचिवाकी** पूज्य माताजी एवं संघ के दर्शनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके साथ में पधारे डॉ० अनुपम जैन ब्यावरा (म० प्र०) ने उन्हें जैन साधुओं के पद विहार, कठिन तपश्चर्या आदि के विषय में बतलाया जिसे सुनकर वे बड़े प्रभावित हुए।

इसी प्रकार गत् सन् १९९१ में हस्तिनापुर से ५० कि०मी० दूर सरधना नगर में पूज्य माताजी का जब संघ सहित चातुर्मास हुआ तब वहाँ प्रतिदिन मेला सा लगा रहा। राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि अनेक प्रान्तों से यात्री बसों का तांता लगा रहा। सरधना निवासी बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अतिथियों का आतिथ्य सत्कार करते तथा अपने नगर को एक जीवन्त तीर्थ मानते हुए फूले नहीं समाते। हस्तिनापुर के आस-पास सैंकड़ों ग्रामों एवं शहरों में विशाल जैन समाज है, उन सभी की अपने-अपने नगरों में माताजी को ले जाकर सानिध्य प्राप्त करने एवं ज्ञान लाभ लेने की तीव्र अभिलाषा है किन्तु विहार करने में लीवर गड़बड़ हो जाने के कारण डॉक्टर, वैद्य, हकीम माताजी को चलना हानिकारक बतलाते हैं। इसीलिए "शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्" का सूत्र अपनाते हुए माताजी भी हस्तिनापुर प्रवास में अपना आत्मिक हित समझती हैं। यहाँ उनकी रत्नत्रय साधना, ज्ञानाराधना तो समुचित चलती ही है, सारे देश की जैन और अजैन जनता भी उनसे हस्तिनापुर आकर जितना लाभ प्राप्त करती है उतना शायद किसी नगर में सम्भव नहीं है।

पूज्य माताजी अक्सर यह कहा करती हैं कि जब तक मेरे पैरों में शक्ति थी, स्वास्थ्य अनुकूल था मैंने हजारों मील की पद यात्रा कर ली है। अब मुझे डोली में बैठकर विहार करने में मानसिक अशान्ति होती है। मुझे किसी तरह की प्रभावना आदि का लोभ नहीं है अतः हस्तिनापुर में रहकर मेरी आत्म साधना ठीक चलती रहे यही मेरी कामना है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में साधु संघ विहार की प्रेरिका—

जम्बूद्वीप रचना के माध्यम से श्री ज्ञानमती माताजी ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश को जहां एक विश्व की अद्वितीय धरोहर प्रदान की है वहीं बड़े-बड़े साधु सन्त भी आपकी प्रेरणा से इस प्रान्त में पधारे जिससे जैनत्व का विस्तृत प्रचार हुआ है।

परम पूज्य आचार्यश्री १०८ धर्मसागर महाराज के पदार्पण के पश्चात् सन् १९७५ मे आचार्यकल्प श्री श्रुतसागर महाराज का हस्तिनापुर एवं उत्तर प्रदेश के कुछ नगरों में पदार्पण हुआ पुनः सन् १९७९ में सुमेरु पर्वत की प्रतिष्ठा महोत्सव में आचार्यकल्प श्री श्रेयांससागर महाराज का ससंघ पदार्पण हुआ। सन् १९८५ में जम्बूद्वीप जिनबिम्ब प्रतिष्ठापना महोत्सव पर आचार्यश्री धर्मसागर महाराज संघस्थ मुनि श्री निर्मलसागर जी एवं कतिपय मुनि आर्यिकाओं का आगमन हुआ तथा आचार्यश्री सुबाहुसागर महाराज ससंघ पधारें।

पूज्य माताजी की सदैव यह हार्दिक इच्छा रही है कि संसार में प्रथम बार निर्मित जम्बूद्वीप रचना के दर्शनार्थ एवं उत्तर प्रदेश की जनता के धर्मलाभ हेतु साधु संघ हस्तिनापुर एवं इस प्रान्त में पधारें। अपने निकटस्थ भक्तों को वे इसके लिए प्रेरणा भी प्रदान करती रहीं हैं। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप सन् १९८७ में सन्मार्ग दिवाकर आचार्यश्री विमलसागर महाराज के विशाल संघ का हस्तिनापुर पदार्पण हुआ और मेरठ बड़ौत आदि शहरों में भी कुछ समय तक संघ का प्रवास रहा। इसी प्रकार सन् १९८९ में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आचार्यश्री कुंथुसागर महाराज के चतुर्विध संघ का हस्तिनापुर पदार्पण हुआ। यहाँ ४० दिवसीय प्रभावना पूर्ण प्रवास के पश्चात् बड़ौत, मुजफ्फरनगर आदि नगरों में उनके चातुर्मास भी हुए।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जनता पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी की इस प्रेरणा, उदारता से अपने को सौभाग्यशाली मानती हैं। इसके अतिरिक्त

आचार्यश्री सुमतिसागर महाराज, आचार्य श्री दर्शनसागर जी, आचार्यश्री कल्याण सागर जी आदि के संघ इस प्रदेश में पधारते हैं वे जम्बूद्वीप रचना के निमित्त से हस्तिनापुर भी अवश्य पहुँचते हैं, यह सब पूज्य माताजी की प्रबल प्रेरणा एव धर्म वात्सल्य का ही फल है।

तन्मयता ने चिन्मयता दी—

कुशल व्यापारी जब व्यापार में तन्मय होता है तो एक दिन सेठ बन जाता है, कुशल चित्रकार अपनी चित्रकारी में तन्मय होकर अचेतन चित्रों में जान फूंक देता है, कुशल डाक्टर तन्मयता पूर्वक मरीजों का इलाज, ऑप्रेशन आदि के द्वारा उसे नवजीवन प्रदान कर देता है, ध्यानी दिगम्बर मुनि ध्यान में तन्मय होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, शिष्य तन्मयता पूर्वक अध्ययन करके ऊँची ऊँची डिग्री प्राप्त कर लेते हैं, गुरु तन्मयता पूर्वक शिष्यों को पढ़ाकर अपने से भी अधिक योग्य बना देते है। कहने का मतलब यह है कि तन्मयता प्राणी को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है।

तत् शब्द में मयट् प्रत्यय लगकर तद्रूप अर्थ में 'तन्मय' शब्द प्रयुक्त होता है। पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी जब अपने लेखन में तन्मय हो जाती हैं तब उन्हें अपने दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों का भान ही नहीं रहता। आश्चर्य तो तब होता है, जब हम लोगों के द्वारा बताए जाने पर कि दूर-दूर से दर्शनार्थी आए हैं, आपने इन्हें हाथ उठाकर आशीर्वाद भी नहीं दिया तब वे कहती हैं कि मुझे तो कुछ पता ही नहीं था मैं लेखन करती हुई साक्षात् समवशरण या अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शनार्थ पहुँच गयी थी। अभी ३ जुलाई की बात है—तहसील फतेहपुर (उ० प्र०) से पुतानचन्द जी के सुपुत्र यशवन्त कुमार एवं सुपुत्री आदि हस्तिनापुर आए, माताजी के दर्शन किए, मैं दूसरे कमरे में बैठी लिख रही थी, मेरे पास आए दर्शन किए और बोले शायद बड़ी माताजी ने हमें पहचाना नहीं। मैं उन्हें लेकर १५ मिनट बाद फिर माताजी के पास पहुँची, माताजी ने उन्हें देखा और उन लोगों से पुतानचन्द जी के बारे में भी पूछा फिर कहने लगीं कि तुम लोग कब आए हो? मैंने कहा, ये तो अभी आपके दर्शन करके गए हैं। माताजी मुस्कराने लगीं और बोलीं—मैं सिद्ध भगवान के गुणों में मगन थी (वे सिद्धचक्र विधान की रचना कर रही थीं) मुझे कुछ पता नहीं कि कौन कब मेरे दर्शन करने

आया। खैर ! वे लोग तो बेचारे माताजी की प्रवृत्ति जानते थे, इसलिए बुरा न मानकर पुनः उनका आशीर्वाद ग्रहण किया किन्तु कितनी ही बार ऐसे प्रसंगों में कुछ भक्तगण नाराज भी होते हैं। उनका कहना रहता है कि माताजी कम से कम हमारी ओर देखकर आशीर्वाद तो प्रदान करें, हम लोग दूर-दूर से केवल इन्हीं के दर्शनार्थ तो आते हैं, उनकी एक दृष्टिमात्र से हमारी सारी थकान दूर हो जाती है।

किसी अंश में भक्तों की अपनत्व भरी यह शिकायत मुझे सत्य ही प्रतीत होने लगती है और मैं माताजी से हँसी-हँसी में कहती भी हूँ कि लेखन के समय आपके साथ तो 'मयट' प्रत्यय ही लग जाता है, तब आप सचमुच तद्रूप परिणत हो जाती हैं। उस समय माता जी का कहना होता है कि तन्मय हुए बिना सुन्दर कार्य की उपलब्धि नहीं होती है। "अधिक जोर देने पर वे कहने लगती हैं—" "ध्यान और अध्ययन तो साधु का लक्षण ही है" इसमें भी श्रावक यदि बुरा मानें तो मैं क्या कर सकती हूँ। अब भक्तगण इस विषय पर स्वयं विचार करें और लिखाई पढ़ाई में व्यस्त पूज्य माता जी से उनके बातचीत के समय पर ही बात करने का प्रयास करें। क्योंकि उनकी यह तन्मयता जहां उनके स्वयं के लिए हितकारी है वहीं लाखों लोगों को ज्ञान और भक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करती है। यही तन्मयता उन्हें चिन्मयता प्रदान करती है।

तपस्विनी की पिच्छिका से घाव ठीक हुआ—

अभी जून १९९२ में सरधना से एक महिला हस्तिनापुर पधारीं उन्होंने यहाँ आकर दर्शन करते ही गद्‌गद् स्वर में कहना शुरू किया कि माताजी की पिच्छी में तो जादू भरा है, असाध्यरोग भी इनकी पिच्छिका स्पर्श से ठीक हो जाते हैं।

अनेक स्थानों से पधारे तीर्थयात्री एवं भक्तगण उत्सुकतावश जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे कि ये मात.जी की पिच्छिका का कौन सा अतिशय बताने जा रही हैं। वे महिला आगे कहने लगीं—

"मेरे ससुर बाबूराम जी शुगर के मरीज हैं। उनके पैर में तीन वर्ष से एक बड़ा घाव था न जाने कितनी दवाइयाँ करने पर भी वह घाव भर नहीं रहा था जिससे वे बड़े परेशान रहते थे। घर में ही चौबिस घन्टे लेटे-२ दुखी थे। एक दिन उनका कुछ पुण्योदय हुआ। पूज्य माताजी

आहारचर्या के बाद वापस आ रही थीं तभी मालियान मोहल्ले में स्थित हमारे घर के सामने से निकलीं। पिताजी ने उन्हें नमोऽस्तु किया और हमने माताजी से उनकी तकलीफ बताई तब पूज्य माताजी ने मंत्र पढ़कर मस्तक पर पिच्छी लगाई तथा उनसे णमोकार मंत्र की माला फेरने को कहा।

आश्चर्य क्या महान अतिशय ही नजर तब आया जब २-३ माह के अन्दर ही बिना किसी दवाई के घाव बिल्कुल सूख गया और अब पिता जी स्वस्थ हैं, प्रतिदिन माताजी को याद कर परोक्ष में ही उनको भक्ति-पूर्वक वंदना करते हैं।

गुरदे के रोगी ठीक हुये—

इसी प्रकार एक दिन मेरठ-सदर निवासी जीवन बीमा निगम के एजेन्ट श्री विजय कुमार जैन सपत्नीक हस्तिनापुर पधारे, साथ में उनकी सुपुत्री कु० प्रियांगना थी। वे बड़ी श्रद्धापूर्वक दर्शन करके माताजी से कहने लगे कि क्या आपने मुझे पहचाना नहीं ? पूज्य माताजी द्वारा उन्हें पहचानने के लिये मस्तिष्क पर जोर डालने पर वे महानुभाव स्वयं अपना परिचय बताने लगे।

मैं सन् १९८७ में अपनी बेटी को आपसे आशीर्वाद दिलवाने लाया था। १२ वर्ष से इसे गुर्दे की बीमारी थी। डाक्टर ने १५ अगस्त सन् १९७५ को पूरा चेकअप करके घोषित किया कि इसे गुर्दे की बीमारी है उसके बाद हमने किसी डॉक्टर का कोई इलाज बाकी नहीं छोड़ा किन्तु सन् १९८७ में इसके दोनों गुर्दे बिल्कुल खराब हो गए। मैं बहुत परेशान था तभी एक दिन अमरचन्द जी होमब्रेड वालों की प्रेरणा से मैं लड़की को लेकर उन्हीं के साथ आपके पास आया।

आपने छोटा सा मंत्र पढ़कर इसे प्रतिदिन पानी देने को कहा और अपनी पिच्छी से आशीर्वाद दिया तब से मेरी लड़की बिल्कुल स्वस्थ है। पुन: चेकअप कराने पर अब इसके कोई बीमारी नहीं निकली।

उन्होंने कहा—मेरी और मेरे परिवार की आपके प्रति अगाध श्रद्धा है, हम लोग तो प्राय: आपके दर्शनार्थ आते ही रहते हैं।

माताजी मुस्कराईं और उन लोगों को, कु० प्रियांगना को खूब-२ आशीर्वाद दिया तथा अपनी पहचानने में स्मरण शक्ति कमजोर कहकर

खेद व्यक्त किया। वैसे उन्हें शास्त्रीय बातें तो ५० वर्ष पूर्व की भी याद हैं। जो कभी किसी ग्रन्थ में पढ़ी थीं दीर्घकाल के बाद भी ज्यों की त्यों बता देती हैं। पूज्य माताजी कभी-कभी मित भाषा में कहा करती हैं कि "जिससे मेरा आत्महित होता है मैं उसी को याद रखती हूँ शेष सब कुछ मुझे अनावश्यक प्रतीत होता है इसीलिए मेरा मस्तिष्क उन्हें याद नहीं रखता है।"

आशीर्वाद वश काल से बाल-बाल बचे—

अभी चंद दिन पूर्व दिनांक ६ जुलाई १९९२ को मेरठ से प्रेमचन्द जैन तेल वाले सपत्नीक हस्तिनापुर पधारें, उनके साथ उनके भतीजे सुभाष जैन भी सपत्नीक तथा और भी कुछ महिलाएं थीं। ये लोग पूज्य माताजी के सानिध्य में आज शांतिविधान करने आए थे। थोड़ी देर बातचीत के दौरान बताने लगे कि माताजी ! आपके आशीर्वाद से सुभाष एवं उसकी बहू मृत्यु के मुँह से बच गए।

कैसे क्या हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि अभी पिछले सप्ताह ही दो बार की गम्भीर चोटों के बाद कुछ स्वस्थ होकर आपके दर्शनार्थ आया था। आपने इसे गले में पहनने के लिए यंत्र दिया और अपने सामने ही चांदी की डिब्बी में वह यंत्र डलवाकर पहनवाया था। पुनः ये लोग आपका आशीर्वाद लेकर मेरठ के लिए वापस चले तो रास्ते में एक बस से इनकी गाड़ी में तेज टक्कर लगी। बस, पता नहीं यंत्र और पुण्य सामने आ गया और ये लोग बच गए जबकि उस गम्भीर एक्सीडेन्ट में इन लोगों को अपने बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। किसी तरह घर तक पहुँचकर ये हम लोगों से चिपककर खूब रोए और अपने गले का यंत्र दिखाकर बार-२ यही कहने लगे कि आज तो हमें माताजी के इसी आशीर्वाद ने बचाया है वर्ना हम घर तक वापस नहीं आ सकते थे। इस तेज टक्कर के बाद भी किसी को खरोंच तक न आई मात्र गाड़ी कुछ खराब होकर रह गई।

पूज्य माताजी कहने लगीं—इसमें हमारा कुछ भी नहीं है, जिन धर्म और उसमें वर्णित मंत्रों में आज भी महान शक्ति है। जो हृदय से इसे धारण करता है उसके अकाल मृत्यु जैसे महासंकट भी टल जाते हैं। तुम्हारा आयुकर्म शेष था अतः बच गए अब धर्म में अडिग श्रद्धा रखना··· इत्यादि।

ये तो मैंने तत्काल बीती २-३ घटनाओं का दिग्दर्शन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है इनके जीवन की ऐसी सैकड़ों घटनाएं हैं जो जैन दीक्षा की कठोर तपस्या एवं अखण्ड ब्रह्मचर्य का प्रभाव बतलाती हैं। कई महिलाओं ने तो पूज्य माताजी के शारीरिक स्पर्श मालिश करके अपने अनेक शारीरिक रोगों को नष्ट कर इन्हें अतिशयकारी "विशल्या" की संज्ञा प्रदान की है।

"भारत माता की गोदी इस माता से कभी न सूनी हो"—

शरद पूर्णिमा की चन्द्रिका, सरस्वती की प्रतिमूर्ति, ब्राह्मी माता की प्रतिकृति, कुमारिकाओं की पथ प्रदर्शिका, युग की प्रथम बाल सती, शताब्दी की पहली ज्ञानमती, जिनशासन प्रभाविका, आर्यिकारत्न, न्याय प्रभाकर, विधान वाचस्पति, दृढ़ता की साकार प्रतिमा, जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका पूज्य १०५ गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का यह लघु परिचय तो मेरे द्वारा अर्पित मात्र एक पुष्पांजलि है। उनके गहन व्यक्तित्व को तो अनेक ग्रन्थ भी प्रकाशित करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं। वे वर्तमान युग में समस्त साधु समाज की सर्वाधिक प्राचीन दीर्घकालीन दीक्षित वरिष्ठ आर्यिका हैं।

मेरी जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना है कि धरती माता का आंचल इन माता श्री से सदैव सुवासित रहे तथा हम सभी को उनके ज्ञान की अजस्र धार में अवगाहन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे।

यहाँ पर अति संक्षिप्त रूप से पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय दिया गया है, उनका वास्तविक परिचय तो उनके साक्षात् दर्शन एवं कृतियों से ही प्राप्त हो सकता है।

अन्त में पूज्य माताजी के पावन चरणों में मेरी यही विनम्र विनयांजलि अर्पित है—

ब्राह्मी चन्दनबाला जैसी छवि जिनमें दिखती रहती।
कुंदकुंद गुरुवर सम जिनकी सतत लेखनी है चलती।।
नारी ने भी नर के सदृश दिखाई चर्या यति की।
मेरी भी वंदन स्वीकारो गणिनी माता ज्ञानमती।।

卐✦✦卐

"एक ज्योति से ज्योति सहस्रों जलती जाएं अखिल विश्व में"

एक नहीं कितनी गाथाएँ इतिहासों में छिपी हुई हैं।
वीर शहीदों की स्मृतियां स्वर्णाक्षर में लिखी हुई हैं॥
नहीं पुरुष की पौरुषता से केवल देश का मस्तक ऊँचा।
बल्कि नारियों ने हंस हंस कर मांगों के सिन्दूर को पोंछा॥१॥

दोनों के सर्वोच्च त्याग ने भारत को आजाद कराया।
ब्रिटिश राज्य परतन्त्र बेड़ियों के बंधन से मुक्त कराया॥
आजादी की परिभाषा ने गांधी का अस्तित्व बताया।
रानी लक्ष्मी के रण कौशल ने जग को नारित्व दिखाया॥२॥

रंग भूमि हो धर्मभूमि या कर्मभूमि की किसी डगर पर।
नहीं भेद है कहीं देख लो ब्राह्मी और सुन्दरी का स्वर॥
वीर प्रभु निर्वाण दिवस से अब तक का इतिहास खुला है।
साहित्यिक निर्माण बालसतियाँ के द्वारा नहीं मिला है॥३॥

इसी देश की कन्या मैना ने धार्मिक इतिहास को बदला।
ज्ञानमती बनकर दिखलाया भारत में अब भी हैं सबला॥
उन्हीं की पुष्टी में इंदिरा जी के बढ़ते कदमों को देखो।
आज हमें सिखलाती हैं कि देश में शासन करना सीखो॥४॥

ज्ञानमती ने जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति का रथ चलवाया।
वरदहस्त पा माताजी का इंदिरा जी ने हाथ लगाया॥
धर्मनीति और राजनीति के शुभ भावों का मधुर मेल है।
जन जन को आलोकित करना ज्ञानज्योति काय ही खेल है॥५॥

एक ज्योति से ज्योति सहस्रों जलती जाएँ अखिल विश्व में।
अन्धकार का नाम नहीं रहने पाए इस अवनीतल में॥
यूं तो जुगनूं का किंचित् टिमटिम प्रकाश होता रहता है।
किन्तु सूर्य को प्रखरकांति से उसका बल खोता रहता है॥६॥

चलो बन्धुओं बढ़ते जाओ कभी शूल से मत घबराना।
शूल के पथ को तुम फूलों की कोमलता से भरते जाना॥
यही महानता है जीवन की ज्ञानमती ने सिखलाया है।
अमर विश्व में रहे "चन्दना" जो प्रकाश हमने पाया है॥७॥

卐◆◆卐

विनयांजलि

शरदऋतू की पूर्ण चांदनी अमृत नभ से बरस रहा था।
शरदपूणिमा का दिन प्यारा जब मैना ने जन्म लिया था।
दोनों की ज्योत्स्ना ने मिलकर नभ को और दिया आकर्षण।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।१।।

अमृतकण चखने को मैना आई इस पृथ्वी तल पर।
स्वयं तृप्त होकर भी अंजलि में लाई हो विश्व अमर।
इसी भावना को संग लेकर आई देने नव जीवन।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।२।।

शैशव में मोहिनि मां के मन को मोह उड़ चली वहां से।
निज को मोक्ष महल पहुँचाने ढूंढ़ रहीं हैं टिकट कहाँ से।
टिकट मिल गया गाड़ी चल दी हुआ शांत तब मैना का मन।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।३।।

श्री आचार्य देश भूषण से प्रारम्भिक दीक्षा पाई थी।
शांति सिन्धु के पट्टशिष्य श्री बीरसिन्धु ढिग तुम आई थी।
बनी आर्यिका ज्ञानमती गुरु नाम दिया तव देख ज्ञान धन।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।४।।

अखिल विश्व कर रहा अचम्भा ज्ञानमयी गरिमा लख कर।
कार्य सर्वतोमुखी किया पर ज्ञान ध्यान में ही तत्पर।
नारी से कह रही "चन्दना" देखो इक नारी का जीवन।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।५।।

कर में सुमन लिए श्रद्धा के आई मां के चरण चढ़ाने।
ज्ञान प्राप्त कर बनूं ज्ञानमती आई मैं भी इसी बहाने।
श्रद्धा से नत-मस्तक होता और प्रफुल्लित है सारा मन।
उनसठवें इस जन्मदिवस पर हम करते शत-शत अभिनन्दन ।।६।।